

समृद्धि का मूलमन्त्र  
चकबन्दी



ξφηχ ¬κφΥρ τφΗκ;κν

अक्टूबर 2014

**परामर्श :**

श्री गणेश सिंह गरीब  
श्री कुंवर सिंह भण्डारी  
डॉ. बी.पी. नौटियाल

**संकलन**

एल.मोहन कोटियाल  
क्रियेटिव मीडिया ग्रुप, पो.बॉ- 12  
पौड़ी ;गढवालद्ध

**सहयोग**

कपिल डोभाल

**लेआउट**

श्री कम्यूनिकेशन  
76, अपर बाजार श्रीनगर (गढ़वाल) 9410392989

**आवरण**

श्री शिव सिंह रावत

**मुद्रक**

शब्द संस्कृति, देहरादून

**प्रकाशक**

गरीब क्रान्ति अभियान

**सहयोग : 50 रुपये**

# दूसरा रास्ता नहीं

हिमालयी राज्यों की एक सामूहिक पहचान है किन्तु प्रत्येक राज्य स्वयं में अपनी अलग पहचान भी रखता है। परिवेश भले ही एक दूसरे से मिलता-जुलता हो किन्तु भाषा, रहन-सहन, संस्कृति, आर्थिक एवं सामाजिक संरचना एक दूसरे से भिन्न है। उत्तराखण्ड भी एक ऐसा ही हिमालयी राज्य है।

राज्य गठन से पूर्व यह भू-भाग उत्तर प्रदेश राज्य का अंग था। लेकिन भौगोलिक, सांस्कृतिक व सामाजिक भिन्नता होने और इसके विकास के न होने के कारण यहां पर लम्बे समय तक पृथक राज्य बनाने हेतु एक लम्बा आन्दोलन चला और 9 नवम्बर, 2000 को यह उत्तरांचल नाम से भारत के 27वें राज्य के रूप में अस्तित्व में आया।

राज्य बनने पर सबके मन में आकांक्षायें थीं कि नये पर्वतीय राज्य के रूप में स्थापित होने पर सरकार यहां के मुद्दों पर तदनुसार कार्यवाही करेगी। अपनी नीतियां होगी तो सरकार उन नीतियों का निरूपण भी करेगी। नगरों के साथ गांव खुशहाल होंगे, उत्पादनशीलता बढ़ेगी और रोजगार के अनेकानेक अवसर सृजित होने से पलायन रुकेगा और राज्य में चहुँ ओर सुख समृद्धि आयेगी। इसमें एक मुद्दा चकबन्दी के जरिये भूमि सुधार का भी था।

राज्य बने 14 साल हो गये किन्तु यह मसला अब भी जस का तस बना है इसलिये इसका अब सीधा प्रभाव नजर आने लगा है। गांवों से पलायन जो यदा-कदा ही होता था आज एक समस्या के रूप में मुंह फैलाता जा रहा है। गांवों में खेतों के तेजी से बंजर होने का जो सिलसिला चल निकला है वह कहीं भी थमता नहीं दिखता है। खेती में कम लाभप्रदता और अधिक मेहनत को देखते हुये लोग खेती करना लगातार त्यागते जा रहे हैं। खेती की उपेक्षा का प्रभाव यह हुआ है कि इससे यहां पर दूसरे कृषिजन्य कामकाज भी समाप्ति की ओर हैं। रही-सही कसर गांव में शिक्षा एवं स्वास्थ्य सुविधाओं की बेरुखी ने पूरी कर दी है। इसने भी गांवों के लोगों को पलायन करने को उत्प्रेरित किया है।

राज्य का 90 प्रतिशत हिस्सा पर्वतीय है जहां सीढ़ीनुमा खेतों पर खेती होती है। ब्रिटिशकाल के आरम्भ में यहां के 99 प्रतिशत निवासियों की आजीविका का आधार खेती-किसानी ही था। खेती तब भी बिखरी थी किन्तु इतनी नहीं जितना आज। लगातार बन्दोबस्त होने से समस्या उतनी उग्र नहीं थी। लेकिन पारिवारिक विभाजन के चलते यह भूमि बंटती चली गई और आज किसी भी परिवार की भूमि एक स्थान पर न होकर औसतन 15-20 स्थानों पर है। खेती में लाभप्रदता तभी हो सकती है जब वह एक ही स्थान पर हो और ऐसा करने के लिये ही "चकबन्दी" की मांग लगातार हो रही है। एक जगह चक होने से अनावश्यक श्रम बचेगा और कोई भी परिवार अपनी भूमि पर योजनानुसार काम कर सकेगा। चक से ही उसकी भूमि की सुरक्षा भी सुनिश्चित हो सकेगी।

आधुनिक व वैज्ञानिक खेती की अवधारणा भी तभी फलीभूत हो सकेगी। संभावनायें अनेक हैं। कई प्रकार के कार्य यहां की जमीन पर हो सकते हैं। जमीन कम है तो कई ऐसी चीजें यहां पर उगाई जा सकती हैं जिनकी बाजार कीमत अधिक हो। आवश्यक नहीं कि हम परम्परागत फसलें ही उगायें। जड़ी-बूटी, सगन्ध पादप, मसाले, सब्जियां, विदेशी सब्जी एवं फल, मौनपालन, मशरूम, पुष्प उत्पादन आदि में तभी सफलता मिल सकती है जब कि किसान का अपना चक हो। चक होने पर ही सरकारी योजनाओं का भी सफलतापूर्वक क्रियान्वयन हो सकता है।

आजादी से पहले व आजादी के बाद अनेक राज्यों में ऐसी समस्या के निदान के लिये भूमि सुधार के कार्य किये गये किन्तु उत्तर प्रदेश में रहते इस पर्वतीय भूभाग उत्तराखण्ड में इस बिना पर चकबन्दी नहीं की गई कि समय के आने पर यहाँ के लिये अलग प्रकार के विधान करने के बाद पहाड़ी भूमि की चकबन्दी होगी।

यह नितांत कष्टप्रद अनुभव रहा है कि यहां पर काबिज रही सरकारें राज्य के विकास का कोई भी मॉडल तैयार नहीं कर पाई है जिसकी बुनियाद पर यह राज्य आगे बढ़ सके। उर्जा, पर्यटन व जड़ी बूटी प्रदेश नारां से आगे नहीं बढ़ सका है। आज भी राज्य कर्ज के पैसे से चल रहा है। राज्य में अनुत्पादक योजनाओं पर खर्च करने से एक ओर कर्ज तो बढ़ता जा रहा है वहीं आय कमाने की राह अब तक नहीं निकल सकी है। वहीं हर साल आ रही दैवीय आपदाओं से भी राज्य लगातार कराह रहा है। ऐसे में राज्य किस राह पर चले यह सबसे बड़ा सवाल है।

जमीन सदा से ही स्थाई रोजगार का माध्यम रही है। भारत की 77 प्रतिशत आबादी ग्रामीण क्षेत्र में निवास करती है और कृषि व कृषिजन्य रोजगार उनकी आजीविका का साधन है। लेकिन उत्तराखण्ड के पर्वतीय क्षेत्र में कृषि व ग्रामीण स्वालम्बन का यह क्षेत्र बहुत पीछे चला गया है। कृषि और स्वालम्बन से इतर यहां पर सरकारी नौकरियों को करने की परम्परा और अधिक बलवती हुई है। यहां का बच्चा युवा होते-होते यह जान जाता है कि उसे भी गांव के अन्य युवाओं की तरह सेना, पुलिस या अर्द्धसैनिक बलों में भर्ती होने के लिये कोशिश करनी है या दूसरी सरकारी नौकरी के लिये प्रयास करने होंगे और असफलता मिलने पर उसे दूसरे नगरों की ओर पलायन करना होगा।

यह एक सच्चाई है कि सुख व सम्पन्नता से जीवन जीने के लिए स्वरोजगार एक प्रभावी विकल्प है। नौकरी में जहां व्यक्तित्व के विकास के अवसर सीमित रहते हैं, वहीं स्वयं के उद्यम में अपने मन मस्तिष्क के अनुकूल काम करने की पूरी स्वतन्त्रता होती है। नित्य नई चुनौतियों के मध्य जब काम करना होता है, तो कोई न कोई रास्ता निकल ही आता है। जिन व्यक्तियों ने अपने अनुरूप स्वावलम्बन के विकल्पों को चुना और उनमें निष्ठा, मेहनत व जोखिम का समावेश किया उस अनुरूप सफलता भी मिली। आज वे न केवल स्वयं में आत्मनिर्भर हैं, बल्कि उन उपक्रमों से रोजगार के कुछ अवसर भी सृजित हुये हैं। फिर भी कुछ कृषकों व कुछ उद्यमियों की पहल इस बात को झुटलाती रही है कि यहां पर कुछ नहीं हो सकता है।

आज जब उत्तराखण्ड में सरकारी नौकरियों के अवसर सीमित हो गये हैं, ऐसे में जमीन को आबाद करना एक मात्र विकल्प बचा है। और यह जमीन तभी आबाद हो सकती है जब यहां की भूमि की चकबन्दी हो। हालांकि यहां के हर निवासों के नाम जमीन नहीं है किन्तु जिनके पास है वह तो आबाद हो। इसी प्रकार से जो लोग यहां की जमीन में काम करना चाहते हैं उनके लिये रास्ता निकाला जा सकता है। हिमाचल का उदाहरण हमारे सामने है जहां का ग्रामीण समाज कृषि व कृषि आधारित दूसरे कामों के कारण आत्मनिर्भर है। जब लोगों को अपने ही घर में आय हो तो क्यों कोई गांवों से पलायन करेगा? चकबन्दी होगी तो स्वावलम्बन की धारणा भी वापिस लौटेगी।

इसके लिये उन बाधाओं को दूर करना होगा जो पर्वतीय क्षेत्र में कृषि विकास के कारकों को हतोत्साहित करते रहे ह। तभी यहां पर सम्पन्नता की राह निकल सकती है और इनमें सबसे प्रमुख चकबन्दी के जरिये भूमि सुधार कराना सबसे महत्वपूर्ण है। इसके लिये जनता में विश्वास जगाना होगा कि चकबन्दी में ही सबका भविष्य जुड़ा है।

— एल.मोहन कोठियाल

## गरीब क्रान्ति अभियान की ओर से...

खेती-किसानी परिवार से सम्बन्ध होने के कारण “चकबन्दी” मेरे लिये कोई नया शब्द कभी नहीं रहा। वर्ष 2008 से सामाजिक मुद्दों के अध्ययन के दौरान मन में अपनी माटी के लिये कुछ कर गुजरने की ललक पैदा हुई लेकिन युवा मन होने से भटकाव जरूर था और सिर्फ सरकारी तंत्र को कोसना आमजन के जैसे ही नियति बन गयी थी।

वर्ष 2009 में पहली बार मेरी मुलाकात चकबन्दी नेता गणेशसिंह गरीब जी के साथ श्रीनगर में मित्र सत्यपालसिंह नेगी के साथ हुई। उनके साथ लगभग 8 घंटे तक चकबन्दी पर चर्चा हुई लेकिन उस समय मैं गरीब जी की विचारधारा का मात्र समर्थन ही कर सका क्योंकि कार्यकर्ता बन कर काम करने का विचार तब तक मन में अंकुरित नहीं हुआ था। लेकिन गरीब जी से लगातार चर्चा होती रही और धीरे-धीरे मैं विषय को समझने लगा कि चकबन्दी एक विचार ही नहीं बल्कि हमारे पर्वतीय राज्य उत्तराखण्ड के विकास की अवधारणा से जुड़ा एक बड़ा सवाल है। इसके बाद मैंने चकबन्दी कार्यकर्ता बनने की स्वीकारोक्ति गरीब जी को दी। कुछ और अधिक अध्ययन करने पर मुझे लगा कि इस विचार को आगे बढ़ाने के लिये इस अभियान को एक ऐसे सर्वमान्य नाम की आवश्यकता है जो गांव, खेत और किसान के नजदीक हो एवं जिसके नीचे उत्तराखण्ड की ज्वलंत अनेक समस्याओं जैसे रोजगार, पलायन संस्कृति और नवोदित राज्य की अवधारणा आदि को उठाया जा सके एवं चकबन्दी इसके मूल में हो।

वर्ष 2011 में कुछ युवा साथियों और चकबन्दी के समर्थकों से सलाह मशवरे के बाद इस अभियान का नाम इंटीग्रेटेड बेस फॉर ग्रामीण एग्रीकल्चर रिवोल्यूशन अर्थात् ग्रामीण कृषि क्रान्ति के लिये एकीकृत आधार एवं संक्षेप में कहें तो “गरीब” तय हुआ। इसके बाद यह अभियान “गरीब क्रान्ति” के नाम से चलाया जाये इस पर सहमति बनी। सबसे पहला लक्ष्य था चकबन्दी विषय को जन-जन से जोड़ना ताकि यह विचार एक मिशन बन सके। वर्ष 2012 में इस विचार को जन-जन तक पहुंचाने के लिये 01 मार्च को “चकबन्दी दिवस” के रूप में मनाने की शुरुआत की गयी। चकबन्दी दिवस मनाने का मुख्य उद्देश्य यह है कि प्रत्येक वर्ष एक चयनित दिन पर हम सब समवेत स्वरों में चकबन्दी की आवाज को बुलंद कर और अधिक से अधिक लोगों तक पहुंचा सकें एवं अपने खण्डहर होते घरों व बंजर खेत खलिहानों की हालत पर मनन कर सकें। इसके लिये दिन तय किया गया 1 मार्च का दिन जो उस

कर्मयोगी 'गरीब' का जन्मदिन है जो उम्र को पीछे छोड़ते हुये आज भी चकबन्दी की अलख जगाये हुये हैं।

1 मार्च, 2012 में आरम्भ में यह संख्या कम थी लेकिन वर्ष 2013 में गढ़वाल सभा एवं दूसरे संगठनों के सहयोग से देहरादून के गाँधी पार्क में चकबन्दी दिवस का आयोजन किया गया। इसमें अनेक लोग जुटे। सोशियल मीडिया के उपयोग को देखते हुये चकबन्दी के समर्थन में प्रचार-प्रसार आरम्भ किया। इसके जरिये हमें ऐसे अनेक साथी मिले जो आज इस अभियान के सिपाही बन कर मैदान में हैं। इससे अभियान को विस्तार मिला। यह वह जनसहयोग ही था जिसने हमें 2014 का "चकबन्दी दिवस" दिल्ली के जंतर-मंतर पर आयोजित करने का साहस दिया। इनमें "उत्तरांचल युवा प्रवासी समिति" दिल्ली के कार्यकर्ता एवं दूसरे संगठनों का सहयोग भुलाया नहीं जा सकता। इस आयोजन के बाद इसकी अनुगूँज सत्ता के गलियारों तक हुई और सरकार ने चकबन्दी करने के लम्बित निर्णय पर अमल करने का ऐलान किया।

आज गरीब क्रान्ति अभियान के साथ अनेकों नौजवान निस्वार्थ भाव से जुड़े हैं और चकबन्दी योजना की जानकारी सोशियल मीडिया, भ्रमण, पोस्टर-बैनर, छोटी-छोटी गोष्ठियों व अन्य माध्यमों के साथ जन-जन तक पहुंचाने में योगदान दे रहे हैं। यह मिशन मात्र हमारा न होकर हर उस उत्तराखण्डी का है जो यहां के गांवों को सम्पन्न देखना चाहता है और यह तभी संभव है जबकि यहां भूमि की अनिवार्य चकबन्दी हो।

आज चकबन्दी की बात अधिक बड़े फलक में होने लगी है। यह सुखद संकेत है कि चकबन्दी को लेकर सरकार भी आगे बढ़ रही है। "पर्वतीय ग्रामों में चकबन्दी" विभाग का गठन, बन्दोबस्त, स्वैच्छिक चकबन्दी की योजना की बात होना हमारे लिये संतोष का विषय है। इस मिशन की सफलता का सम्पूर्ण श्रेय उन कार्यकर्ताओं और सहयोगियों को जाता है जो अभियान को अपना आर्थिक, वैचारिक एवं सामायिक सहयोग प्रदान कर रहे हैं। लेकिन अभी रास्ता लम्बा है क्योंकि सबसे बड़ा सवाल चकबन्दी को कार्यरूप में जमीन पर उतारना है। यह सरकारी स्तर पर होना है। जब तक इस अभियान के साथ आपका और अधिक सहयोग नहीं होगा तब तक सरकारी स्तर पर हमारी बात अनसुनी होती रहेगी। इसलिये भविष्य में इस अभियान में हमें आपसे उसी प्रकार के सहयोग की अपेक्षा रहेगी जिस प्रकार आपने अब तक इस अभियान को दिया है। तब जाकर पर्वतीय राज्य उत्तराखण्ड के गांव आर्थिक, सामाजिक व सांस्कृतिक रूप से समृद्ध हागे तभी राज्य भी प्रगति के पथ पर अग्रसर हो सकता है।

**कपिल डोभाल**  
**समन्वयक**

## गरीब क्रान्ति अभियान

**प्रेरक – श्री गणेश 'गरीब'**

**संरक्षक मण्डल :** श्री कुंवर सिंह भण्डारी, श्री धूम सिंह नेगी, श्री विजय जड़धारी, श्री जगत सिंह चौधरी 'जंगली', श्री यु(वीर सिंह रावत, श्री कल्याण सिंह रावत 'मैती' **परामर्श मण्डल :** डॉ. बलवीर सिंह रावत, डॉ. भगवती प्रसाद नौटियाल, श्री चतुर सिंह नेगी, श्री बिमल नेगी, श्री शंकर सिंह भाटिया **संयोजक- गढ़वाल मण्डल :** श्री सतपाल नेगी **संयोजक- कुमायूँ मण्डल :** श्री धीरेन्द्र अधिकारी **संयोजक-दिल्ली :** श्री जगमोहन जिज्ञासू **प्रचार प्रसार :** श्री शिवसिंह रावत, श्री सीताराम बहुगणा, श्री प्रदीप रावत **समन्वयक :** श्री कपिल डोभाल **संयोजन सचिव :** श्री एल मोहन कोटियाल **संयोजक मण्डल :** श्री हेमन्त नेगी, श्री विनोद रावत 'मनकोटी', श्री दीपक असवाल, श्री विनय खण्डूड़ी, श्री मनीष सुन्दरियाल, श्री जगमोहन डांगी, श्री मनीष भट्ट, श्री बलवन्त गुसाई, श्री विकास ध्यानी, श्री अनूप पटवाल।

21/29 इ.सो. राड, देहरादून, उत्तराखण्ड 248001

9639369736, 9634542086 9045802998

मउपस रु हंतपइतंदजप/हउपसण्वउए बिमइववा रु हंतपइ तंदजप

**केन्द्रीय कार्यालय :**

चंदन वाटिका, पो. सूला, वाया मवाधार, पौड़ी गढ़वाल 246163

# अनुक्रम

1. उत्तराखण्ड की वर्तमान स्थिति	11
2. बदल सकती है तस्वीर चकबन्दी से	47
3. कैसे होती है चकबन्दी	83
4. कुछ ज्वलन्त सवाल	97
5. चकबन्दी आन्दोलन एक नजर में	111

## उत्तराखण्ड की वर्तमान स्थिति

यद्यपि गढ़वाल एवं कुमायूँ क्षेत्र को भिन्न भौगोलिक, सांस्कृतिक एवं आर्थिक पृष्ठभूमि के चलते राज्य बनाने की मांग बहुत पहले से चली आ रही थी किन्तु इस मांग के साथ जनसमर्थन न होने के कारण वह विचारों में ही बनी रही। उ.प्र. के साथ रहते हुये जब उत्तराखण्ड विकास की दौड़ में लगातार पिछड़ने लगा और यहां की बात अनसुनी होने लगी तो राज्य को लेकर आन्दोलन वैचारिक स्तर से धरातल पर आने लगा।

इस पर इस मांग के समर्थक इस निर्णय पर पहुंचे कि चूंकि यह एक राजनीतिक मांग है इसलिये इस संघर्ष को राजनीतिक स्तर पर चलाये बगैर कुछ नहीं होने वाला है। इसी अवधारणा के आधार यहां पर एक क्षेत्रीय राजनीतिक दल का उदय हुआ। उत्तराखण्ड क्रान्ति दल के नाम से बने इस दल ने राज्य की मांग को व्यापक जनान्दोलन में बदलने का काम किया।

सन् 1994 में पौड़ी में अगस्त में आरम्भ हुआ आरक्षण विरोधी आन्दोलन अन्ततोगत्वा राज्य आन्दोलन में बदला और लाखों की संख्या में जनता राज्य बनाने के लिये सड़कों पर उमड़ पड़ी। इस आन्दोलन के अगले 4 माह तक अनेकों जगह अनशन, भूख हड़तालें व उग्र प्रदर्शन हुये जिसमें कई लोगों जानें गईं और अनेक लोगों को कष्ट झेलने पड़े। अन्ततोगत्वा इस लम्बे जनसंघर्ष को देखते हुये केन्द्र सरकार की भाजपा सरकार ने इस राज्य के गठन के औचित्य को अपनी सहमति देते हुये जुलाई, 2000 में तीन राज्यों के गठन हेतु राज्य पुनर्गठन विधेयक 2000 संसद में प्रस्तुत करने का ऐलान कर डाला। इसके अन्तर्गत उसने 1 अगस्त, 2000 को तीन नये राज्यों के गठन के बिल को पहले लोकसभा में व 10 अगस्त, 2000 को राज्यसभा में पारित करवा इन राज्यों के गठन का रास्ता साफ किया। 28 अगस्त, 2000 को इस बिल को महामहिम राष्ट्रपति की स्वीकृति मिलते ही उत्तरांचल, झारखण्ड और छत्तीसगढ़ राज्यों के गठन का रास्ता साफ हो गया।

नये राज्य की औपचारिकताओं के पूर्ण होते ही 9 नवम्बर, 2000 को 27वें राज्य के रूप में उत्तरांचल की स्थापना कर दी गई। 2006 में कांग्रेस सरकार ने इसका नाम उत्तरांचल बदलकर पौराणिक नाम उत्तराखण्ड कर दिया।

### ऐतिहासिक एवं भौगोलिक पृष्ठभूमि :

उत्तराखण्ड नाम इस राज्य का पौराणिक नाम है जो केंदारखण्ड व मानसखण्ड दो भूभागों से मिल कर बना है। उत्तराखण्ड में धार्मिक स्थलों, मन्दिरों, पवित्र स्थलों एवं )षि मुनियों के तपस्या केन्द्रों की बहुलता से इसको देवभूमि भी कहा जाता है। इन स्थलों का विवरण अनेक धार्मिक पुस्तकों में मिलता है।

देश के दूसरे क्षेत्रों की तरह इस क्षेत्र का इतिहास भी हजारों साल पुराना है। एक ओर यहां पर प्रागैतिहासिक काल की बसासत के प्रमाण मिलते हैं दूसरी ओर कुशाणकालीन सत्ताओं की सीमायें यहां तक फैली थीं। हर्षवर्धन के काल में सातवीं सदी ई. में भारत भ्रमण पर आये चीनी यात्री ह्वेनसांग के यात्रा वृत्तान्त में उत्तराखण्ड की सीमाओं में तीन राज्य बहमपुर, स्त्रुघ्न तथा गोविषाण का उल्लेख है। इनमें पौरवों का ब्रह्मपुर राज्य सबसे विशाल था। हर्षवर्धन की मृत्यु के बाद ,648 ई.द्ध उत्तराखण्ड का इतिहास कुछ अस्पष्ट सा है। उनके काल के बाद उत्तराखण्ड गढ़ों की बहुलता वाला क्षेत्र बन गया।

माना जाता है कि कार्तिकेयपुर राजवंश उत्तराखण्ड का प्रथम ऐतिहासिक राजवंश है। पाण्डुकेश्वर, कण्डारा, बागेश्वर आदि से मिले दानपत्रों से इस राजवंश का पता चलता है। इस राजवंश ने 700 ई. से 1050 ई. तक उत्तराखण्ड के विशाल भू-भाग पर शासन किया। कार्तिकेयपुर राजाओं के पश्चात् मध्यकालीन कुमाऊँ में कत्यूरियों की विशेष चर्चा मिलती है। मध्यकालीन कत्यूरियों की कई शाखाओं ने कुमाऊँ में शासन किया। वहीं परमार वंश की स्थापना राजा कनकपाल ने लगभग 888 ई. में चाँदपुरगढ़ जो चमोली जनपद में की है। परमार वंश के शक्तिशाली राजा अजयपाल ने अनेकों ठकुराइयों/गढ़ों में बंटे इस क्षेत्र पर न केवल अपना अधिपत्य किया बल्कि शासन करने की दृष्टि से अपनी राजधानी चाँदपुरगढ़ से पहले देवलगढ़ ले आये और फिर सन् 1517 में सुविधा की दृष्टि उसे श्रीनगर में स्थापित कर दिया। अजयपाल के वंशजों ने श्रीनगर गढ़वाल से अगले 300 साल तक राज किया। वहीं कत्यूरी राजवंश के पतन के पश्चात् कुमाऊँ में चंद राजवंश की नींव पड़ी। इस वंश के पहले शासक सोमचन्द थे। 1790 ई. में गोरखा आक्रमणकारियों ने चन्द शासन का कुमाऊँ से अन्त कर दिया और कुमाऊँ पर अधिकार कर लेने के बाद 1803 में उसने गढ़वाल पर आक्रमण कर उसे अपने अधिकार में कर लिया।

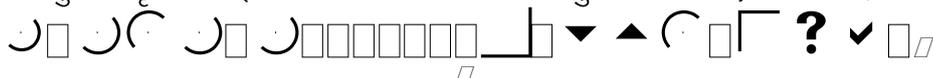
प्रद्युम्नशाह के पुत्र सुदर्शनशाह ने अंग्रेजों की सहायता से 1815 में गोरखों को परास्त किया किन्तु य( व्यय न दे पाने के कारण अंग्रेजों ने गढ़वाल का विभाजन करवा दिया। इसका एक हिस्सा ब्रिटिश गढ़वाल अपने पास रखा जबकि अलकनन्दा के पश्चिमोत्तर वाला हिस्सा टिहरी सुदर्शन शाह को दे दिया जो बाद में रियासत के रूप में जाना गया। टिहरी रियासत को छोड़ कुमायूँ एवं गढ़वाल पर सौ साल से भी अधिक समय तक ब्रिटिश हुकूमत रही। लम्बे समय तक भारत में चले स्वाधीनता संग्राम के बाद 15 अगस्त 1947 को भारत ब्रिटिश हुकूमत की परतन्त्रता से मुक्त हुआ। इसके बाद 1949 में टिहरी रियासत को राजशाही से मुक्ति मिली। इस प्रकार से यह क्षेत्र स्वतन्त्र भारत के राज्य उत्तर प्रदेश का हिस्सा बना।

### भौगोलिक सीमायें :

उत्तराखण्ड राज्य देश के उत्तरी हिमालयी राज्यों में से एक है। पश्चिम में इसकी सीमायें हरियाणा एवं हिमाचल प्रदेश से व दक्षिण में उत्तर प्रदेश को छूती हैं। इसके उत्तर में चीन एवं पूर्व में नेपाल की अन्तर्राष्ट्रीय सीमायें हैं। भौगोलिक दृष्टि से यह राज्य 28° 42' उत्तरी अक्षांश से 31° 28' उत्तरी अक्षांश तथा 77° 35' पूर्वी देशान्तर से 81° 5' पूर्वी देशान्तर के मध्य स्थित है। आकार में आयाताकार लगने वाले इस भू-भाग का क्षेत्रफल लगभग 53,845 वर्ग किमी. है, जिसके कल क्षेत्रफल में से 46035 वर्ग किमी. यानि 92.55 प्रतिशत भाग पर्वतीय एवं 7448 वर्ग किमी. यानि 7.43 प्रतिशत भाग मैदानी ;तराई और भाबर सहितद्ध है। इसमें से 34,434 वर्ग किमी.;लगभग 63 प्रतिशतद्ध वन क्षेत्र में आता है।

भू-संरचना की दृष्टि से इस भू-भाग को उच्च हिमालय, मध्य हिमालय एवं लघु हिमालय तथा शिवालिक श्रेणियों के रूप में विभाजित कर देखा जाता है, जो अविच्छिन्न रूप से नाना प्रकार की वनस्पतियों से आच्छादित हैं। उच्च हिमालय क्षेत्र में हिमाच्छादित पर्वत श्रेणियाँ हैं, जो 6 से 8 हजार मी. के मध्य स्थित हैं। इस क्षेत्र में अनेक हिमनद हैं, जिनसे भागीरथी, अलकनन्दा, टोंस, भिलंगना, पिण्डर, काली, गोरी और यमुना आदि नदियाँ निकलती हैं। हिम शिखरों व हिमनदों के अलावा मध्य हिमालय में स्थित श्रृंखलाओं से अनेक दूसरी नदियों का उद्गम होता है, जिनमें से ज्यादातर नदियाँ राज्य की सीमा मे ही दूसरी बड़ी नदियों में जा मिलती हैं।

ग्रीष्मकाल में निचले मैदानी क्षेत्रों में भरी गर्मी पड़ती है जबकि 1500 मीटर से अधिक ऊंचाई वाले स्थानों में मौसम सुहावना रहता है। इस राज्य में 2500 मीटर तक की ऊंचाई वाले क्षेत्र वर्षाकाल में प्रचुर वर्षा होती है। वही शीतकाल 1,500 से 3,000 मी.की ऊँचाई तक के स्थानों पर शीतकाल में बर्फ गिरती है। जलवायु की दृष्टि से इस पर्वतीय प्रदेश की जलवायु अति आर्द्र एवं शीत है।



जिला	क्षेत्रफल वर्ग किमी0	तहसीलें	विकास खण्डं	कुल गांव	ग्राम पंचायते	नगरीय केन्द्र	जनसंख्या 1991	जनसंख्या 2001	दशकीय वृद्धि प्रतिशत
पौड़ी	5,397	05	15	3,197	1,178	07	6,82,535	6,96,851	3.87
टिहरी	3,796	05	09	1,742	762	05	5,00,686	6,04,608	16.15
चमोली	7,626	06	09	1,206	492	06	3,54,999	3,69,198	13.51
उत्तरकाशी	8,016	04	06	669	373	03	2,39,709	2,94,179	22.72
देहरादून	3,088	04	06	743	335	09	10,25,679	12,79,083	24.71
रुद्रप्रयाग	2,252	02	03	561	328	02	1,79,339	2,27,461	13.44
हरिद्वार	1,994	03	06	503	299	06	11,24,488	14,44,213	32.88
अल्मोड़ा	3,074	03	11	2,139	1158	03	6,07,920	6,30,446	3.14
नैनीताल	4,767	05	08	1,058	463	07	5,10,542	7,62,912	27.79

पिथौरागढ़	7,218	05	08	1,551	677	03	4,16,496	4,62,149	10.92
बागेश्वर	2,311	02	03	880	404	01	2,28,697	2,49,453	9.21
चम्पावत	1,638	01	04	623	303	04	1,69,594	2,24,461	17.56
उधमसिंह नगर	2,027	04	07	748	338	15	10,09,950	12,34,548	26.30
<b>कुल योग</b>	<b>53,204</b>	<b>49</b>	<b>95</b>	<b>15,620</b>	<b>3,717</b>	<b>71</b>	<b>70,50,634</b>	<b>84,79,562</b>	<b>19.20</b>

### जनसंख्या वितरण :

आजादी के बाद 2011 में देश में हुई सातवीं जनगणना के आँकड़ों के अनुसार उत्तराखण्ड की कुल जनसंख्या 1 करोड़ 86 हजार आंकी गई, जिसमें पुरुष 43,16,401 तथा महिलाएं 41,63,161 हैं। इस प्रकार, भारत की कुल जनसंख्या में 121 करोड़ में से 0.8 प्रतिशत जनसंख्या उत्तराखण्ड राज्य में प्रवास करती है। आंकड़ा की दृष्टि से देखें, तो जनसंख्या की दृष्टि से उत्तराखण्ड राज्य का देश में 20वाँ स्थान है। उत्तराखण्ड में 13 जिलों की जनसंख्या के आंकड़ों को देखें, तो पाते हैं कि राज्य में सर्वाधिक जनसंख्या 14,44,213 हरिद्वार जिले की है, जबकि सबसे कम जनसंख्या यानि 2,24,461 वाला जिला चम्पावत है।

### जनसंख्या उत्तराखण्ड ग्रामीण एवं नगरीय 2011

जनपद	ग्रामीण	नगरीय	कुल योग	दशकीय वृद्धि
उत्तरकाशी	305781	24305	330086	11.89
चमोली	332209	59396	391605	5.74
टिहरी	548792	70139	618931	2.35
पौड़ी	574568	112703	687271	.1.32
देहरादून	754753	941941	1696694	32.33
रुद्रप्रयाग	232360	9925	242285	6.53
पिथौरागढ़	413834	69605	483439	4.58
अल्मोड़ा	560192	62314	622506	.1.28
चम्पावत	221305	38343	259648	15.63
बागेश्वर	250819	9079	259898	4.18
नैनीताल	582871	371734	954605	25.13
पर्वतीय योग	4777484	1769484	6546968	12.76
उधमसिंहनगर	1062142	586760	1648902	33.45
हरिद्वार	1197328	693094	1890422	30.63
मैदानी जनपद	2259470	1279854	3539324	31.93
कुल जनपद	7036954	3049338	10086292	18.80

### स्थानीय निकास एवं पंचायतें

जनपद	तहसीलें	विकास खण्ड	आबाद ग्राम	नगर/समूह	न्याय पंचायतें	ग्राम पंचायतें
उत्तरकाशी	6	6	694	3	36	454
चमोली	8	9	1170	6	39	601
टिहरी	8	9	1774	7	76	979
पौड़ी	9	15	3142	9	118	1208
रुद्रप्रयाग	3	3	653	2	27	323
पिथौरागढ़	7	8	1572	3	64	669
अल्मोड़ा	9	11	2184	5	95	1146
चम्पावत	4	3	874	1	35	397
बागेश्वर	4	4	662	4	23	290
देहरादून	6	6	731	22	40	403
नैनीताल	8	8	1097	11	44	460
पर्वतीय योग	72	82	14553	73	597	693
उधमसिंहनगर	7	7	674	19	27	309
हरिद्वार	3	6	518	24	48	316
मैदानी जनपद	10	13	1192	43	73	625
योग समस्त जनपद	82	95	15745	116	670	7555

### प्रशासनिक एवं राजनीतिक परिचय :

उत्तराखण्ड, दो मण्डलों गढ़वाल और कुमाऊँ में विभक्त है, जिसमें कुल 13 जनपद हैं। इनमें 7 जनपद गढ़वाल मण्डल में और 6 जनपद कुमाऊँ मण्डल में हैं। उत्तराखण्ड के इन 13 जिलों में 78 तहसीलें व 7 उप-तहसीलें हैं, जबकि राज्य में विकासखण्डों की संख्या कुल 95 है। राज्य में कुल न्याय

पंचायतों की संख्या 671 हैं, जो उत्तराखण्ड की 16828 ग्रामों में न्यायिक कार्य करती हैं। उत्तराखण्ड में 13 जिला पंचायतें, 95 क्षेत्र पंचायतें, 7224 ग्राम पंचायतें हैं। इसके अतिरिक्त नगरीय प्रशासनिक दृष्टिकोण से 1 नगर निगम, 31 नगर पालिका परिषद तथा 28 नगर पंचायतें हैं।

देश के संविधान में वर्णित कल्याणकारी राज्य की परिकल्पना को साकार करने हेतु उत्तराखण्ड में स्वायत्त शासन को अत्यधिक महत्व प्रदान किया गया है। राज्य में जनसंख्या के आधार पर नगरीय एवं ग्रामीण स्वायत्त संस्थानों एवं संगठनों का वर्गीकरण शिक्षा परिषद, ग्राम पंचायत, नगर परिषद तथा नगर निगम के रूप में किया गया। उत्तराखण्ड में ग्रामीण एवं नगरीय स्वायत्त शासन का त्रिस्तरीय स्वरूप प्रदान किया गया। ग्रामीण शासन को ग्राम पंचायत, क्षेत्र समिति तथा जिला परिषद के रूप में विभाजित किया गया है, जबकि नगरीय शासन को क्षेत्र एवं जनसंख्या के अनुरूप नगर समिति, नगर परिषद तथा नगर निगम के नाम से वर्गीकृत किया गया है।

उत्तराखण्ड में एक सदनीय व्यवस्थापिका की व्यवस्था की गई है। उत्तराखण्ड में एक सदनीय व्यवस्था के आधार पर विधानसभा के गठन का प्राविधान किया गया है। उत्तराखण्ड की विधानसभा को 70 विधानसभा क्षेत्रों में विभाजित किया है और इस प्रकार वर्तमान में विधानसभा के लिए 70 सदस्यों का चुनाव प्रत्यक्ष रूप से किया जाता है और 1 सदस्य राज्यपाल द्वारा एंग्लोइंडियन समुदाय से मनोनीत किया जाता है। इस प्रकार, उत्तराखण्ड की विधानसभा में कुल 71 सदस्य सम्मिलित हैं। उत्तराखण्ड की विधानसभा में संवैधानिक प्राविधान के अनुसार अनुसूचित जनजाति एवं अनुसूचित जातियों के लिये आरक्षण का प्राविधान है, जिसके अनुसार 12 सीट अनुसूचित जाति और 3 साट अनुसूचित जनजाति के लिये आरक्षित हैं।

उत्तराखण्ड 5 लोकसभा क्षेत्र और 3 राज्यसभा क्षेत्रों में बँटा है। यद्यपि राज्य की अवधारणा के मूल में गैरसैन को राजधानी माना गया था, किन्तु विगत 14 सालों में राज्य की शासित सरकारों ने गैरसैन के तर्क को दरकिनार करत हुये अपनी सुविधा के लिये देहरादून को स्थाई राजधानी में बदल दिया है। जहां तक गैरसैन का सवाल है, अब वहां ग्रीष्मकालीन राजधानी की बात की जा रही है, ताकि पर्वतीय राज्य की अवधारणा के प्रति भी अपनी निकटता दिखाई जा सके। गैरसैन में अलग से विधानसभा भवन का निर्माण करना सरकार का एक सांकेतिक निर्णय ही लगता है। उत्तराखण्ड का उच्च न्यायालय नैनीताल में स्थित है और राज्य लोक सेवा आयोग हरिद्वार में स्थित है।

### **अर्थव्यवस्था :**

उत्तराखण्ड राज्य की अर्थव्यवस्था मुख्य रूप से कृषि आधारित रही है। 40 साल पहले इस क्षेत्र का अपना सदृढ़ कृषि ढांचा था। एक स्वावलम्बी आधार के कारण पहाड़ों के गांव तब आज के मुकाबले अधिक सरसब्ज थे, लेकिन अब कृषि के प्रति लोगों को मोह कम होता जा रहा है। कारण पैदा हो रही विषम परिस्थितियां। कृषि क्षेत्र में घटती लाभप्रदता भी इसका एक कारण है। भूमि की विषम परिस्थितियों को देख कृषि का विकास करना आज सम्भव नहीं रहा। अन्य आर्थिक क्षेत्रों में रोजगार व आजीविका की उपलब्धता व आय के कारण स्थानीय लोगों की निर्भरता कृषि कार्यों में कम हुई है। पिछले दो दशकों में स्थानीय लोगों का रुझान सरकारी व गैर सरकारी नौकरियों की ओर रहा है। क्योंकि कृषि कार्य से साल भर के राशन से अधिक कुछ नहीं कमाया जा सकता है जबकि सरकारी नौकरी में भविष्य ज्यादा सुरक्षित है, लेकिन निजी क्षेत्र में भी राज्य के हजारों युवा कार्यरत हैं। खासतौर से औद्योगिक इकाइयों में जहां काम ज्यादा करना होता है, मगर पैसे कम मिलते हैं। चूंकि दूसरा विकल्प नहीं है, इसलिए तराई के इन कारखानों में खटना उनकी मजबूरी भी है। परम्परागत कृषि के चले आने से कृषि से सीधी आय कमाने की दिशा में अभी रास्ता काफी दूर है।

उत्तराखण्ड की अर्थव्यवस्था के विषय में कुछ तथ्य बहुत रोचक है। उत्तराखण्ड के जितने लोग इस क्षेत्र में रहते हैं लगभग उतने ही लोग देश के अन्य भागों में कार्यरत हैं। उत्तराखण्ड में खेती योग्य पर्याप्त भूमि नहीं है। अतः यहाँ के लोगों के लिये रोजगार के प्रमुख साधन हैं— सेना, अ( सैनिक, राज्य में सरकारी नौकरियां, निजी क्षेत्र की नौकरियां, होटल और रेस्तरां दुकानों में काम, सुरक्षाकर्मी के कार्य आदि। इसी कारण उत्तराखण्ड की अर्थव्यवस्था को मनीआर्डर अर्थव्यवस्था कहा जाता है।

जब उत्तराखण्ड का गठन हुआ था, तब राज्य को लगभग 2600 करोड़ रुपये की कुल देनदारी विरासत में मिली थी। तब उम्मीद थी कि उत्तराखण्ड राज्य अपने संशोधनों का विकास कर इस )ण को चुकता कर देगी, लेकिन पिछले 14 साल में सरकार संसाधन उगाही के कोई न तात्कालिक साधन विकसित नहीं कर सकी और न देनदारी ही कम हुई। ऊपर से राज्य सरकार ने अपनी विभिन्न योजनाओं को चलाने के लिए विश्व बैंक, अन्तर्राष्ट्रीय मुद्राकोष, यूरोपीय समुदाय और दूसरे अन्य स्रोतों आदि से लिए गए )णों से आज राज्य की जिम्मेवारी 25 हजार करोड़ रुपयों के पार चली गई है। उत्तराखण्ड राज्य की अर्थव्यवस्था मुख्य रूप से केन्द्रीय )णों और अनुदानों पर ही निर्भर है। योजना आयोग की संस्तुति पर भारत सरकार ने उत्तराखण्ड को 1 अप्रैल 2001 से विशेष राज्य का दर्जा प्रदान किया गया था, जिसे पाने वाला उत्तराखण्ड राज्य देश का 11 वाँ राज्य बना है, किन्तु विशेष राज्य का दर्जा मिलने पर भी उत्तराखण्ड के पर्वतीय क्षेत्र में कोई भी बदलाव नहीं दिखा। हां, तराई में जरूर

औद्योगिक विकास के कुछ क्षेत्र उभरे तो सही, किन्तु इसका मुख्य लाभ उन इकाइयों को ही अधिक मिला। यद्यपि यहां से उत्पाद शुल्क के रूप में एक बड़ी राशि राज्य को मिलती है, किन्तु यह राशि राज्य सरकार को अपने कर्मचारियों के वेतन भत्तों को देने में लग जाती है।

उत्तराखण्ड की भौगोलिक स्थिति को देखें, तो इसका ज्यादातर हिस्सा पहाड़ी है, जहां पर समतल भूमि का अभाव है। खेत सीढ़ीनुमा, असिंचित व यत्र-तत्र बिखरे हैं। इसलिये मैदान के सापेक्ष यहीं की जमीन की उत्पादनशीलता बेहद कम है। इसके बावजूद राज्य में खरीफ फसल के अन्तर्गत गेहूं, चावल, बाजरा, मक्का, मूँगफली, ज्वार, तिल, दाल, तिलहन, सोयाबीन की खेती तो होती है, किन्तु यह इतनी नहीं कि इसका यहां से निर्यात हो सके। इसके अलावा यहां पर अनेक प्रकार के फल यथा सेब, नासपाती, प्लम, माल्टा आदि भी प्रचुर मात्रा में होता है। कुछ क्षेत्रों में अब सब्जी भी उगाई जाने लगी है और यहां से वह बाहरी नगरों में पहुंचती है। यहां पर पाले जाने वाले दुधारु पशुओं में गाय व भैंस हैं, जबकि दूसरे पशुओं में बैल, भेड़-बकरी तथा खच्चर हैं।

### गांवों की वर्तमान स्थिति :

2011 की जनगणना के अनुसार, इस उत्तराखण्ड राज्य की जनसंख्या लगभग 1.08 करोड़ हो चली है। इसमें से लगभग 70 लाख की आबादी ग्रामों में प्रवास करती है। राज्य के कुल ग्रामों की संख्या जहां 16583 है, तो ग्राम पंचायतों की संख्या 7055 है। इन ग्राम पंचायतों में से लगभग 75 प्रतिशत ग्राम सभायें पर्वतीय क्षेत्र में पड़ती हैं, जबकि शेष तराई में अवस्थित हैं। पर्वतीय क्षेत्रों की भौगोलिक संरचना मैदानी क्षेत्रों से एकदम भिन्न है। यहां पर भूमि का अभाव तो है साथ में वह चकबन्दी न होने से बिखरी हुई भी है। सिंचन क्षमता बहुत न्यून है। जहां मैदानी क्षेत्र में ग्रामों की अर्थव्यवस्था का मुख्य आधार कृषि है, वहीं दूसरी ओर पर्वतीय भूभाग में कई कारणों से परम्परागत कृषि अब रोजगार प्रदायक नहीं रह गई है। ग्रामीण अर्थव्यवस्था के कमजोर होने के कारण यहां से प्रतिवर्ष हजारों युवा मैदानी क्षेत्रों को पलायन कर जाते हैं। इस कारण गांवों में यत्र-तत्र बंजर खेत एवं खण्डहर भवन नजर आने लगे हैं। कई गांव तो आबादी शून्य हो चले हैं।

बंजर खेती और पलायन को देखते हुये अब ग्राम पंचायतों के विकास की अवधारणा को बदलने की आवश्यकता हो गई है। गांव में जो भी बजट जा रहा है, बिखरी खेती के कारण उसका लाभ कम, जबकि दुरुपयोग अधिक हो रहा है। आज विकास खण्डों में करोड़ों की योजनायें तो आ रही हैं, किन्तु वह जमीन पर उतरती नहीं दिखती हैं। जब पंचायतों के सशक्तीकरण की बात होती है, तो ज्यादातर लोग इसका अर्थ ज्यादा पैसे व आजादी से ही लगाते हैं। इसी कारण युवाओं का ध्यान पंचायतों की ओर हुआ है, जो इसे रोजगार के रूप में लेते हैं। इस पैसे से ग्राम समाज में विकृतियां पैदा हो रही हैं। गांव में एका कम हो गई है।

मूलतः पंचायतराज प्रणाली के सशक्तीकरण की बात जब होती है, तो उसका अर्थ गांवों को सक्षम व सबल बनाना ही है, लेकिन पूर्व में पंचायतों में चलाई गई योजनाओं में आत्मनिर्भरता जैसा मुद्दा गौण रहा है। गांवों में स्वरोजगार पैदा करने और कुटीर उद्यम के विकास की ओर कोई ध्यान नहीं दिया गया। प्रधानमंत्री रोजगार गारन्टी योजना के तहत 90 दिन का रोजगार प्रदान करने के तहत आज जो भी काम हो रहा है, उसकी मजदूरी भले ही ग्रामीण पा रहा है, किन्तु उस श्रम का लाभकारी योजनाओं में उपयोग करने की ओर ध्यान कम ही दिया गया है। कुछ साल पहले सरकार की चाल-खाल विकास योजना पर इस योजना से ऐसा श्रम करवाया गया था, किन्तु उसका लक्ष्य मात्र बजट खर्च करने तक सीमित रहा। जिन गांवों में इसे चलाया गया, वहां पर बनी चाल-खालों को आज के दिन देखा जाय, तो इस कार्यक्रम की पोल खुलती दिख जायेगी। कुछ के लिये गांवों में विकास का मतलब खड़जे बिछाने और वनीकरण की दीवालबन्दी की सीमा तक सीमित है।

महज बजट खर्च करने से तब तक कुछ नहीं होने वाला है, जब तक कि भूमि सुधार न हो। उत्तराखण्ड क्षेत्र की प्राकृतिक विविधता एवं बहुलता स्थानीय आत्मनिर्भरता को बनाने में पूर्ण रूपेण सक्षम है, किन्तु इस क्षेत्र में अब तक चलाई गई योजनाओं से यहां की अर्थव्यवस्था को मजबूत करने का लक्ष्य दूर ही रहा है।

गांवों के लिये चल रही सरकारी योजनायें यदि चलती होती, तो पहाड़ में कृषि आधारित गतिविधियों का एक मॉडल खड़ा हो गया होता। इससे यहां के खेत व मकान इस प्रकार से खण्डहर व बंजर न होते और चारों ओर आत्मनिर्भरता व खुशहाली दिख रही होती। लेकिन इस ओर कभी ध्यान देने का प्रयास ही नहीं किया गया कि क्यों ऐसा हो रहा है और क्या बजट खर्च करने से हालात बदल जायेंगे? इसका मूल्यांकन करने की आवश्यकता अब तक नहीं समझी गई। इसकी व्यापक समीक्षा करने की आवश्यकता थी, लेकिन ऐसा आज तक नहीं हुआ। सरकारी विभागों ने कभी भी गांव से हो रहे पलायन व खण्डहर होते गांवों को केन्द्र में रखकर योजनाओं के बारे में साचा होता कि आखिर योजना बनाने के बावजूद ऐसा क्यों हो रहा है? फिर भी जिस गांव से सारे लोग पलायन कर चुके हैं, उस गांव में

आज भी सिंचाई की गूल बिछ रही है क्यों वहां के लिये योजनायें बन रही हैं। आखिर ऐसे में धन की बरबादी क्या औचित्य है?

### स्वावलम्बन की घटती प्रवृत्ति :

दशकों से उत्तराखण्ड का आर्थिक तंत्र सरकारी कर्मचारी की तनखाह के बूते ही घूमता रहा है और यहां के समाज में जो भी भौतिक विकास दिखाई देता है, वह एक प्रकार से सरकारी खजाने पर आधारित विकास ही है। अंग्रेजी दौर से लेकर आज तक सरकारी कर्मचारी ने नई पीढ़ी को शिक्षा दिलाने में सबसे अधिक रुचि दिखाई, लेकिन इस शिक्षा में निजी उद्यमशीलता का कोई पाठ न होने से सारा श्रम सरकारी नौकरी हासिल करने तक सीमित रहा। शुरु में तो उतनी दिक्कत नहीं आई, लेकिन आज यहां पढ़े-लिखे बेरोजगारों को एक प्रकार विशाल फौज खड़ी हो गई है। आज व्यवस्था को लेकर यहां के समाज में जो असन्तोष है, उसके मूल में यही बेकारी है। अलग राज्य की मांग के मूल में भी असल में यही कारण छिपा था।

औपनिवेशिक दौर से लेकर वर्तमान तक पहाड़ की श्रमसाध्य जनता को अपने पांवा पर खड़ा होने लायक ठोस विकल्प नहीं दिए गये और परिस्थितियों ने समय के साथ इस क्षेत्र को मनीआर्डर अर्थव्यवस्था की खोह में धकेल कर रख दिया। इस स्थिति ने उत्तराखण्ड में अपेक्षित आर्थिक आधार को कभी पनपने नहीं दिया। हालांकि यहां के कंधों ने राष्ट्रीय जरूरतों के भार कम नहीं उठाए। दशकों तक यहां के जंगल देश की इमारतों से लेकर रेल और रेल पटरियों हेतु लकड़ी उपलब्ध कराते रहे, लेकिन इसका कोई आर्थिक लाभ भी इस क्षेत्र को नहीं मिल पाया। सरकारी आंकड़ों के मुताबिक आज भी इस क्षेत्र का 65 प्रतिशत भाग वन्य क्षेत्र के अंतर्गत आता है। राज्य में खेती लायक जमीन सिर्फ 13 से 18 प्रतिशत ही है। इसमें भी असिंचित क्षेत्र अधिक है। बड़े बांधों और लगातार सरकारी अधिग्रहण से वह लगातार सिकुड़ रही है।

उत्तराखण्ड की आर्थिक दशाओं के केन्द्र में जल, जंगल, जमीन के मुद्दे हमेशा से रहे हैं। वर्षों से लगातार एक असंतुलन इनमें हम देख रहे हैं। यह असंतुलन पहाड़ को निरंतर कठिन भौगोलिक दशाओं की ओर धकेलता जा रहा है। साथ ही हमें वनाधिकार, वन संरक्षण, पर्यावरण, पारिस्थितिकी और कई अन्य संबंधित मुद्दों पर बहस और चिन्ता के लिए भी प्रेरित करता रहा है। जिन कारणों से पहाड़ का अर्थतंत्र ट्रेजरी पर आश्रित होता गया है। निश्चित तौर पर उन्हें पेड़ों की जड़ों में खोजा जा सकता है। वन जहां जीवन के इतने करीब हों, वहां जीवन का जंगल से रिश्ता समझना कठिन नहीं है। इस सवाल पर व्यापक बहस हो चुकी है।

### सरकारी नीतियां :

सन् 1815 में सिंगोली की संधि के उपरान्त ब्रिटिश उपनिवेशवाद ने यहां पांव फैलाने शुरु किए। इससे पहले यहां जंगलों पर कोई प्रशासनिक नियंत्रण नहीं था। लोग इन पर अपना पैदायशी हक मानते थे। जंगल तब सांस्कृतिक पक्ष से भले जुड़े रहे हों या फिर आक्रांताओं के खिलाफ मोर्चाबन्दी अथवा छिपने-बचने के ठिकाने, लेकिन इनके कोई आर्थिक-व्यापारिक उपभोग की कल्पना न तो लोगों को थी और न शासकों को। राजशाही द्वारा ग्रामीणों को अधिक से अधिक खेती के लिए प्रोत्साहित किया जाता था और जमीन कम से कम एक पीढ़ी तक लगान मुक्त रहती थी। तब जंगलों में अंदर तक भी खेती का प्रचलन था, जहां जमीन अधिक उर्वरक होती थी।

अंग्रेजों ने सबसे पहले समस्त सरकारी भूमि को सुरक्षित वन घोषित कर कलेक्टर के अधीन कर दिया। इस पहाड़ी प्रदेश को अपने अधिकार में लेने के पीछे उनका असली लक्ष्य चीन से व्यापार को आसान बनाने और यहां के जंगलों के व्यापारिक दोहन का था। वर्ष 1911 में बाकायदा वन बंदोबस्त करते हुए नाप भूमि को छोड़कर सारी जमीन सुरक्षित वन क्षेत्र बना दी गई। इस तरह जंगलों पर जनता के अधिकार छीन लिए गए। जंगलों में मीलों तक खेती और इससे जुड़े श्रम का जो पारम्परिक आधार यहां था, उस पर लगी रोक ने यहां की उद्यमशीलता को झटका दिया। आज भले ही पहाड़ी पुरुष की छवि एक काम न करने वाले व्यक्ति की बनी है, लेकिन यही पुरुष कभी यहां के पूरे अर्थतंत्र की रीढ़ था। पुरुष के नौकरी पर जाने से बदली हुई परिस्थितियों में यह भार यहां की स्त्री के कंधों पर आ गया।

19वीं सदी के मध्य में पहाड़ के किसान को भू-स्वामित्व का हक तो मिला, किंतु उसके एवज में उसे बहुत बड़ी कीमत जंगलों पर अपना पैदायशी अधिकार खोकर चुकानी पड़ी, क्योंकि भू-स्वामित्व के साथ ही खेती के बंटवारे का भी सिलसिला शुरु हो गया और पलायन की नींव पड़ गई। जंगलों पर आश्रित आजीविका पर सरकारी नियन्त्रण का सीधा प्रभाव यह हुआ कि खेती और काम का बोझ बढ़ गया। जंगलों के आरक्षित होने और बदले में कोई वैकल्पिक प्रबन्ध न होने से सारे आर्थिक सरोकारों को सरकारी नौकरी पाने तक सीमित कर दिया। नौकरियां सबसे बड़ी तादाद में सेना में भर्ती के विकल्प के रूप में सामने आईं और शारीरिक कद-काठी के हिसाब से साधारण कहे जाने वाली यहां की व्यक्ति का शुमार 'मार्शल रेस' में हो गया। दो-दो विश्वयुद्धों ने यहां के उद्यमशील किसान और

कारोबारी सिपाही बन कर लड़े। यहीं से ही मनीआर्डर अर्थव्यवस्था की शुरुआत हुई। परिस्थितियों ने जो राह दिखाई, उससे अब तक यह राज्य मुक्त नहीं हुआ है। पलायन की स्थिति तो यह है कि पहाड़ से भागकर मैदानों में जाना यहां के समाज की नियति बन चुका है।

### उद्यमी समाज का पतन :

एक उद्यमी समाज ने अपने सतत विकास के लिए सरकारी नौकरी का जो विकल्प चुना था, उसके परिणामस्वरूप हमारा आधार कितना कमजोर हो गया है, यह इस क्षेत्र के अलग राज्य बनने के बाद महसूस होना लगा है। दशकों से जारी इस प्रक्रिया ने हमारी जो मानसिकता तैयार की है, वह आज निश्चित ही चौराहे पर खड़ी होकर ठिठकी लगती है। इस दौर में पहाड़ों ने जो कुछ खोया है और सिर्फ एक बिन्दु पर चिंता जताते हुए अन्य सरोकारों के प्रति जो निरापदता दिखाई है, उसके परिणामस्वरूप आज गांवों में स्वरोजगार जैसी कोई बात नहीं है। माना कि यहां पर सिंचित और उपजाऊ जमीन का भारी अभाव है, लेकिन खेती की चकबंदी न करने की चिंता पर हुक्मरानों ने कुछ नहीं किया। उनको न इसकी चिंता है और न उनकी इसमें दिलचस्पी। यही कारण रहा कि बागवानी व पशुपालन जैसे रोजगारपरक क्षेत्रों में एक बड़ा शून्य उभर आया है और सबसे बड़ी चिन्ता यह कि लघु व कुटीर उद्योगों के प्रति एक पीढ़ी की सोच पर ऐसा काला पर्दा पड़ चुका है, जिससे उबरने में अगली पीढ़ी भी खुद को हताश पा रही है।

हालांकि ऐसा नहीं है कि इन क्षेत्रों के लिए सरकारी योजना मद में धन आवंटित न होता हो, अरबों रुपया पहाड़ों में पानी की तरह बहाया जाता रहा है, लेकिन जागरूकता और सबसे अधिक साक्षरता का दावा करने वाला समाज यदि इस सत्य से इतना निरापद रहा है और प्रतिक्रियात्मक ताकतें ताकती भर रही हैं, तो कहना चाहिये कि मानसिकता के परिवर्तन में बदलाव के लिए हमें अभी एक और पीढ़ी का इन्तजार करना होगा।

### मनन करने का समय :

एक लंबे दौर के पश्चात् पहाड़ को 'ट्रेजरी' पर आधारित अर्थतंत्र से मुक्त होने का अवसर मिला है। नये राज्य बने 14 साल होने को हैं, जिसके हालात देखकर अब लगने लगा है कि जिस राज्य के लिये हमने संघर्ष किया था, उस पर सोचने का समय आ गया है। विकास के नाम पर मांगा गया यह राज्य नियोजन में बहुत पिछड़ चुका है। महत्वपूर्ण बात यह है कि नियोजन की असल चिन्ता न तो शासक वर्ग और न ही शासितों की ओर से सामने आ रही है। इतना तो तय है कि एक समय के बाद इस राज्य में अब सरकारी नौकरी रोजगार का मुख्य साधन नहीं रहने वाली है। राज्य में नौकरी के अवसर घटने तय हैं। पहाड़ में सबसे सुविधामय रोजगार का साधन समझे जाने वाले स्कूल अब उतनी तेजी से नहीं खुल सकेंगे। अभी इस क्षेत्र के विधायक, स्कूलों की स्थापना अथवा उनके उच्चीकरण के एकमात्र काम को अपने पांच वर्षों की विधायकी की एकमात्र सौगात और जनता के प्रति निभाया गया सबसे बड़ा उत्तरदायित्व मानते रहे हैं। स्कूलों के इस जाल ने सीमित मात्रा में नौकरियां तो दी, किंतु शिक्षित बेरोजगारों की एक विराट फौज तैयार करने का भी काम किया, क्योंकि शिक्षा के क्षेत्र में गुणात्मक परिवर्तनों की ओर आज तक ध्यान नहीं किया जा सका है। कभी-कभी तो लगता है कि विकास के नाम पर पहाड़ को कदम-कदम पर किए गए स्कूलों-कालेजों ने यहां के समाज का उतना भला नहीं किया है। 'शिक्षा' ने उद्यमशीलता का पाठ नहीं पढ़ाया और नौकरी के लिए पलायन की राह दिखाई। परिणामस्वरूप बुनियादी साधनों में हिस्सेदारी के लिए उत्तेजित होने की बजाय पहाड़ हमेशा आंखे मूंदे रहा है। अब भी समय है, नींद खुल जानी चाहिये।

### हिमाचल का अनुसरण कब:

उत्तराखण्डवासियों ने हिमाचल की तर्ज पर राज्य बनाने की मांग की थी, किन्तु उसका अनुसरण कभी नहीं किया गया। हिमाचल ने वे सारे प्रबन्ध किये हैं, जिससे राज्यवासी का हित संरक्षित हो सके, लेकिन इस राज्य में आज भी उत्तर प्रदेश की तर्ज पर ही सब कुछ हो रहा है। पड़ोसी राज्य हिमाचल में व्यक्तिगत, सहकारिता एवं सरकारी स्तर पर अनेक उद्यम संचालित हो रहे हैं और सभी में उनको सफलता मिली है। एच.पी.एम.सी.का एप्पल जूस का उदाहरण यह बताने को काफी है, जो आज देश के हर रेलवे प्लेटफार्म पर उपलब्ध मिलता है, लेकिन उत्तराखण्ड जहां पर माल्टे का भारी उत्पादन होता है, के द्वारा एच.पी.एम.सी. जैसा कोई ब्रांड आज तक विकसित नहीं हो पाया है।

हिमाचल में मिली सफलता के पीछे यह महत्वपूर्ण तथ्य है कि प्रारम्भ में शुरू किए गए प्रयासों को सहकारी एवं सरकारी स्तर पर उचित सहयोग एवं मार्गदर्शन नियमित रूप में प्राप्त होता रहा है। व्यवस्थागत दोष वहां भी उपलब्ध हैं, परन्तु उन पर स्थानीय जनसमूह का दबाव बराबर रहा है। यही कारण है कि स्वयंसेवी संस्थाओं की विकास के लिए बहुउपयोगिता उत्तराखण्ड में जिस जोर एवं शोर में

प्रचारित किया गया, वह हिमाचल में देखने को नहीं मिलता। वहां पर सरकारी कार्यक्रम एक निर्धारित मानकों तक अपना कार्य बखूबी कर रहे हैं। वहां पर स्थानीय उत्पाद पूरी मार्केटिंग के साथ बाजार में उपलब्ध हैं, जबकि उत्तराखण्ड में यात्रा के द्वार से लेकर जहां भी जायेंगे, यहां के घरा की दीवारें पूरी तरह विदेशी शीतल पेयों के विज्ञापनों में रंगी दिखेंगी। यह एक प्रकार से हमारी ही कमी को उजागर करते हैं कि हमारे पास अपने राज्य में ऐसे पेय प्रोडक्ट ही नहीं हैं।

### भूमि वितरण :

सदियों से यह धरा पालनहार रही है। जब तक मानव में समझ विकसित नहीं हुई थी, वह कंद मूल फल खाता, शिकार कर उससे अपनी भूख मिटाता। कालान्तर में उसने कृषि के विकास के साथ पशुपालन की तरीकों को जाना। यही दो तरीके ऐसे हैं, जिन पर आश्रित होकर वह सदियों से जिंदा रहा है।

कृषि, पशुपालन और निवास के लिये मानव को भूमि की आवश्यकता हुई। उस समय आबादी कम थी और मानव इधर-उधर अपनी आवश्यकता के अनुसार जमीन आबाद करता गया। इसके बाद वह समाज बना कर रहने लगा। समाज विकसित हुआ, तो सामाजिक व्यवस्थायें भी जन्म लेने लगीं। कबीलों से होते हुये राजतन्त्र विकसित हुये और उनका चलाने के लिये प्रणालियां विकसित हुई और सभी प्रणालियों में मालिकाना भूमि से कराधान लेने के नये-नये तरीके ईजाद हुये। यह सब सदियों से चलता रहा। भूमि का मालिकाना हक एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी में स्थानान्तरित होता रहा। कम आबादी होने के कारण प्राचीन समय में भूमि की समस्या न थी। भूमि कम होती, तो जंगल काट कर खेत बना दिये जाते। झूम खेती आम थी, लेकिन 18वीं शती के बाद किसकी, कहां पर कितनी भूमि है, यह तय करने की आवश्यकता महसूस हुई और बन्दोबस्त किये गये, ताकि भूमि के परिमाण के आधार पर लगान लिया जा सके। बाद में इस भूमि की पैत्रिक भूमि के रूप में पहचान बनी। फिर यह पैत्रिक भूमि पारिवारिक विभाजन होने से बंटने लगी।

मैदानी क्षेत्रों में चूँकि चकबंदी एक सतत् प्रक्रिया है। इसलिए वहां पर बिखरे खेतों संबंधी समस्या ही नहीं है, किन्तु पहाड़ी क्षेत्र में कभी भी चकबन्दी न होने से असमान भूमि होने के कारण जगह-जगह पर बंट गई है। आज जमीन रिकार्ड में तो है, किन्तु समय पर भूमि सुधार व बन्दोबस्त न होने से आज भू-अभिलेख, नक्शे, खेतों के संटवारे-बंटवारे, क्रय-विक्रय, बयनामे, वसीयतनामे, दाखिल-खारिज, जोत-बही व बन्दोबस्त में रिकार्ड भिन्नता जैसी अनेक समस्याएं अलग से पैदा हो गई हैं।

### बिखरी जोत के नुकसान :

देश को आजाद हुए 67 वर्ष व्यतीत हो चुके हैं, लेकिन पहाड़ में खेती करना बड़ा ही खर्चीला, कष्टदायक और अलाभकर काम जैसा हो गया है। फसलों की सुरक्षा व सिंचाई की व्यवस्था करना, वैज्ञानिक व योजनाबद्ध तरीके से खेती, बागवानी, चारा उत्पादन, पशुपालन, वृक्षारोपण आदि का काम कर उससे आय में वृद्धि करना सम्भव नहीं रहा। जिससे कृषकों का गांव व खेती से मोहभंग होता जा रहा है। गांव के लिये बजट का सदुपयोग न होना और भौतिक उपलब्धियों के लिये कागजों का पेट भरने से चहुं ओर भ्रष्टाचार का बोलबाला है। इससे गांव में विकृतियों का पैदा होना एक स्वाभाविक व सामाजिक प्रवृत्ति बनती जा रही है।

दूर-दूर तक बिखरे फ़ैले खेतों में हल, बैल ले जाना, गोबर पहुँचाना, खेतों की निराई-गुड़ाई करना, उनकी सुरक्षा करना, उसके बाद मंडाई करना और खेतों से घर तक अनाज व घास उठाकर लाने ले जाने में समय, शक्ति व धन बर्बाद हो जाता है। उत्पादन का हिसाब लगाया जाये, तो जितना हल लगाने में खर्च होता है, उतना भी उसमें पैदा नहीं हो पा रहा है। कहीं गोबर नहीं पहुँचता, तो कहीं पालतू व जंगली जानवर फसल को चर कर बर्बाद कर जाते हैं। इसका हिसाब लगाया जाये, तो पायेंगे कि 100 रु0 लागत लगाकर केवल 40 रु0 का अन्न प्राप्त होता है। यानि 60 रुपये की सीधी क्षति हो रही है। यदि श्रम के हिसाब से बात करें, तो इस पर लगभग 50 प्रतिशत समय की बर्बादी होती है। इसके अलावा किसान परिवार का काफी समय लकड़ी, पानी, घास लाने में लगता है।

यह एक सर्वमान्य सत्य है कि जब तक खेत छोटे-छोटे टुकड़ों में बिखरे रहेंगे, तब तक उन खेतों में कोई भी लाभकारी योजना नहीं बन सकती और कृषक का ध्यान खेती पर केन्द्रित नहीं हो सकता। बिखरे असंगठित खेतों में लाभकारी योजना बनाना समस्या है। खेतों का यत्र-तत्र बिखरा होना, पचास-पचास परिवारों को जमीन एक ही संयुक्त खाते में होना, एक ही खेत पर अनेक परिवारों की हिस्सेदारी होना, 75 प्रतिशत परिवारों का लम्बे समय से अनुपस्थित होना और सरकार का क्षेत्रीय कृषकों के प्रति उदासीन होना यहां की एक त्रासद स्थिति है।

अगर हम आजादी के 67 वर्षों के इतिहास का देखें, तो पाते हैं कि जब उत्तर प्रदेश के मैदानी क्षेत्र में चकबन्दी हुई, तो उससे वहां उत्पादन में 8 से 10 गुना वृद्धि हुई, जबकि उत्तराखण्ड के पर्वतीय क्षेत्र में चकबन्दी न होने से उत्पादन गिरता चला गया। आजादी से पूर्व पहाड़ का किसान जिस जमीन से दो बोरी धान या गेहूं लेता था, आज उसी जमीन से 20 किलो भी प्राप्त नहीं कर पा रहा है। इस क्षेत्र

में कृषि विकास के लिये अभी तक ऐसा कोई भी बुनियादी कार्य नहीं किया गया, जिसके सार्थक परिणाम निकले हों। आज से 60 वर्ष पूर्व 10 प्रतिशत खेतों में सिंचाई होती थी और शत प्रतिशत खेतों में खेती होती थी, लेकिन आज सिंचाई के नाम पर भारी बजट खर्च होने पर भी पर दो प्रतिशत खेतों में भी सिंचाई नहीं होती।

### कैसे विकसित हो फिर से खेती :

गढ़वाल जनपद को देखें, तो यहां की 90 प्रतिशत जनसंख्या गांवों में रहती है और खेती करती है। इनमें लगभग 92 प्रतिशत सीमांत कृषक, 7 प्रतिशत छोटे कृषक और एक प्रतिशत बड़े कृषक हैं। सभी कृषक परिवारों के खेत ;तराई भाबर छोड़कर 30 से 40 जगह दूर-दूर और निकटवर्ती गांवों में बिखरे पड़े हैं तथा 50 से 70 प्रतिशत तक बंजर हो चुके हैं। लगभग 40 प्रतिशत परिवारों के पास एक एकड़ ;20 नाली से कम जमीन है। लगभग 60 प्रतिशत परिवार स्थाई रूप से बाहर बस गये हैं। 25 प्रतिशत परिवार 10-20 वर्षों से गांव छोड़कर शहरों व मैदानों में रह रहे हैं और गांव में आने की सम्भावना नहीं है। केवल 25 प्रतिशत भूमिधर परिवार ऐसे हैं, जो अपनी गरीबी व मजबूरी के कारण गांव में रह रहे हैं और खेती कर रहे हैं तथा गांव के मतदाता हैं।

### कृषकों की श्रेणियां प्रतिशत में

क्रम	कृषकों की श्रेणी	उत्तराखण्ड	पौड़ी गढ़वाल
1	सीमान्त कृषक	90	92
2	लघु कृषक	08	07
3	बड़े कृषक	02	01

### गढ़वाल की आबाद व बंजर भूमि ;प्रतिशत में

क्रम	कृषकों की श्रेणी	आबाद खेत	बंजर पड़े खेत
1	सीमान्त कृषक	80	20
2	लघु कृषक	30	70
3	बड़े कृषक	10	90

### खेतों का अनुमानित बिखराव

क्रम	जनपद	खेतों का बिखराव	कुल जमीन ;प्रति परिवार
1	उत्तरकाशी	8 से 10 जगह	100 नाली
2	टिहरी	8 से 20 जगह	80 नाली
3	चमोली	8 से 15 जगह	80 नाली
4	रुद्रप्रयाग	8 से 20 जगह	70 नाली
5	पौड़ी गढ़वाल	20 से 70 जगह	40 नाली

### कुटीर उद्योगों का ह्रास :

कृषि कार्य से विमुख होने से उत्तराखण्ड में अनेक विसंगतियां पैदा हो चली हैं। गांव में रोजगार की समस्या गम्भीर है। पहले यहाँ पर कृषि पूर्ण रोजगार का साधन थी व कई कुटीर उद्योग अलग से चलते थे। किन्तु भूमि का उचित प्रबन्धन न होने से व इसमें नुकसान होने से लोग कृषि से विमुख होते वले गये। इससे यहां पर कृषि एवं कृषि आधारित अर्थव्यवस्था कमजोर हो चली है। उ.प्र.में हरित क्रान्ति की सफलता के पीछे चकबंदी ही मुख्य सुधार था, लेकिन यहां पर इस सुधार के न होने से उत्तराखण्ड जैसे छोटे नवोदित राज्य के आर्थिक विकास पिछड़ गया है। गांव में खेती किसानी नहीं होने से उस पर आधारित परंपरागत काम करने वाले लोगों की आजीविका भी संकट में है। एक समय गांव में बढ़ई, लोहार, मिस्त्री आदि कामों से कईयों की रोजी चलती थी, लेकिन खेती के बंजर होने व गांवों से पलायन होने से कई प्रकार के काम-काज समाप्त प्रायः हो गये हैं। एक समय गांव में हल लगाने के सामान, निराई-गुड़ाई करने के औजार, सूप, टोकरी बनाने वाले, काटने के औजार, भण्डारण के कोठार, भवन निर्माण, मूर्ति कला, काष्ठ सामग्री निर्माण से लेकर पारम्परिक चिकित्सा प(ति, सांस्कृतिक कार्यों के निष्पादन में स्वरोजगार मिलता था। इससे जुड़े लोगों के पास आज कोई काम नहीं है। नतीजतन परंपरागत काम गांवों से लगभग समाप्त होने लगे हैं। इन कामों की मांग न होने से नये लोग इन्हें नहीं सीख रहे हैं।

### योजनाओं का लाभ जमीन पर न दिखना :

आज सरकार गांवा के विकास की कितनी ही सुन्दर योजनायें क्यों न बना ले और कितना भी धन खर्च कर ले, लेकिन उत्तराखण्ड के पर्वतीय क्षेत्र में जमीनी समस्या का निदान किये बगैर उसका रत्ती भर भी लाभ जनता व क्षेत्र को नहीं मिल सकता है। यदि ऐसा होता, तो यहां पर लम्बे समय से चल रहे बीस सूत्रीय कार्यक्रम, एकीकृत ग्राम्य विकास कार्यक्रम, जलागम प्रबन्ध परियोजना, राष्ट्रीय बागवानी मिशन, जवाहर रोजगार योजना, सूखोन्मुखी क्षेत्र विकास कार्यक्रम, अम्बेडकर ग्राम, किसान रथ का भ्रमण, गांधी ग्राम, आदर्श ग्राम, अटल ग्राम, हरियाली योजना, आत्मा परियोजना, मनरेगा आदि अनेकों कार्यक्रमों का लाभ जमीन पर भी दिखता। विचारणीय बात यह है कि जब किसान के पास समुचित भूमि एक जगह पर उपलब्ध ही नहीं है, तो योजनायें मात्र कागजों में ही तो सिमटेंगी। इससे वास्तविक हकदार लाभ से वंचित होंगे ही। कृषि व बागवानी को लेकर यहां पर खुले संस्थान भी किसानों को कितना ही पाठ क्यों ना पढ़ा लें कि वे ऐसा करें, वैसा करें, लेकिन जिस भूमि पर काम होना है, वह जब बिखरी हालत में हो, तो फिर उस पर कैसे काम हो सकता है?

### घटता पशुपालन :

पशुपालन ग्रामीण अर्थव्यवस्था का एक आधार रहा है और कृषि को पूर्णता प्रदान करता है। जब से मानव ने खेती में पशुओं के प्रयोग को जाना, तब से पशुओं के श्रम का इस्तेमाल खेती व दूसरे कार्यों में लगातार होने लगा और आज यह एक-दूसरे के पूरक जैसे हैं। पशुओं का प्रयोग आज भी सीमान्त एवं लघु किसान खेत जोतने में प्रयोग करते हैं। बदले में पशुओं को खेती से खाद्य की आपूर्ति होती है। भूसी, खली, चरी तभी है, जब खेत हैं। यद्यपि आज तकनीकी खेती आगे बढ़ रही है, जिसमें मशीनों से ही खेत की जुताई होती है, सिंचाई होती है, कटाई और मण्डाई में भी मशीनों का प्रयोग हो रहा है, किन्तु छोटे किसानों के लिये उसके पशु ही सब कुछ हैं। पर्वतीय क्षेत्र की यदि बात करें, तो यहां पर कम जोत होने के कारण बैल ही श्रम का सबसे कारगर विकल्प है। इसके अलावा पशु गोबर की खाद एक अनमोल पदार्थ है, जिसका कोई विकल्प नहीं है। खाद के रूप में गोबर के गुणों की महिमा निराली है।

उत्तराखण्ड में एक समय पशुपालन की समृद्ध परम्परा थी। हर परिवार में गाय, भैंस तो पालने की परिपाटी थी। इससे यहां के निवासियों को दूध, घी व दूसरे उत्पाद मिलने के अलावा गोबर की खाद व बैल के रूप में श्रम में सहायता मिलती थी। भेड़ एवं बकरी पालन भी वह इनके साथ-साथ किया करता था, जिनसे किसान या ग्रामीण को ऊन एवं मांस मिलता था। आज से पचास साल पहले तक बैलों की जोड़ी रखने वाले परिवार की प्रतिष्ठा ही अलग होती थी। इसी प्रकार से किसी के परिवार की हैसियत उसकी जोत एवं पशुओं की संख्या से आंकी जाती थी। उत्तराखण्ड में बनने वाले हर घर के आधार पर पशुशाला तो होती ही थी। ग्रीष्मकाल के समय में जब चारा कम हो जाता था, तो पशुपालक पहाड़ों पर छानियों, खर्क या दूसरे चरागाहों में रहते थे, ताकि उनके पशुओं को चारे की आसानी से पूर्ति हो सके, लेकिन बदलाव के दौर में लोगों ने खेती के साथ पशुपालन को तिलांजली ही दे दी है।

आज जोतों के बिखराव के कारण खेती करना श्रमसाध्य व मंहगा कार्य हो गया है। इसलिये लोगों का झुकाव मनरेगा की मजदूरी की ओर हो चला है। इससे भी खेत बंजर होते जा रहे हैं। जब खेत बंजर होंगे, तो पशुओं को चारा कहां से दे पायेंगे। इसलिये गांवों में पशुपालन कम हो गया है। कभी जिन गांवों में पशुओं के झुण्ड के झुण्ड दिखा जाते थे और हर परिवार में 1 या 2 भैंसे हुआ करती थी, आज वहां थैली के दूध का उपयोग हो रहा है। कुछ गांवों में आज भैंस देखना तक कठिन हो गया है।

### वन्य जन्तुओं का आतंक :

उत्तराखण्ड में बंजर हो रही खेती के कारण एक और नई समस्या दिखने लगी है वह है जंगली जानवरों के द्वारा फसलों को भारी नुकसान पहुंचाया जाना। हालांकि ऐसा हर क्षेत्र में नहीं है कुछ ऐसे इलाकों जहां से पलायन ज्यादा हुआ है या जहां पर ज्यादा खेत बंजर है ऐसा उधर देखने में आ रहा है। हिंसक पशुओं में द्वारा बाघ, गुलदार एवं भालू के हमले लगातार होते रहे हैं जिसके परिणामस्वरूप राज्य के पर्वतीय क्षेत्र में अनेक लोग काल कवलित होते रहे हैं व कई घायल हो जाते हैं। यद्यपि पहले भी जंगली जानवर हमला करते थे किन्तु पहले ऐसी घटनायें यदाकदा ही हुआ करती थीं।

आज उत्तराखण्ड में मनुष्य एवं जानवर के बीच संघर्ष सामान्य बात हो चली है। इसके कई कारण गिनाये जाते रहे हैं। यथा जंगलों को काटा जाना, वन्य क्षेत्र में भोजन की कमी, जंगली जानवरों का अवैध शिकार, जंगलों की आग के कारण भोजन की तलाश में हिंसक पशुओं का आबादी के निकट आना भी है। पहले वे घरेलू व दूसरे जानवरों को निशाना बनाते हैं जिनमें से कुछ जानवर मनुष्यों पर हमला करने का साहस करने के बाद आदमखोर हो रहे हैं फिर उनको मारना ही एक विकल्प रह जाता है।

इधर पिछले 15 साल में जंगली जानवरों द्वारा खेत खलिहानों को नुकसान पहुंचाने की घटनायें आम हो गई हैं। इससे वे लोग जो आज भी बिखरे खेतों पर काम कर किसी तरह अपनी आजीविका चला

रहे हैं बेहद हताश व निराश हैं। इससे उनका जीना दूभर हो गया है। कठोर श्रम करने के बाद जब जानवर उनकी फसल को बरबाद कर दे तो निराशा होना स्वाभाविक है। इनमें बंदर एवं लंगूर के अलावा जंगली सुअर व बारहसिंघे हैं वहीं कुछ स्थानों पर मोर भी बढ़ रहे हैं। 25 साल पहले पहाड़ में चारों ओर खेती होती थी पहले बंजर खेत कम होते थे और गांवों से नाम मात्र का पलायन था। उस समय गांवों में जनशक्ति का अभाव न था इसलिये जंगली जानवरों खदेड़ना आसान था। तब जानवरों के द्वारा होने वाला नुकसान कम लगता था। किन्तु आज ऐसा नहीं है आज गिने चुने खेत व गांव आबाद दिखते हैं इसलिये बंदर व दूसरे जंगली जानवर ऐसे खेतों व गांवों का ही रुख करते हैं जहां पर खेती या बागवानी स्थित हैं या जिस गांव में गिने-चुने खेत आबाद हैं। जंगली जानवरों का आतंक आज अपेक्षाकृत अधिक महसूस हो रहा है।

वहीं जंगलों में आग लगने या लगाये जाने की घटनाआ से भी वनों में कंद-मूल फलों की उपलब्धता घटने से भी जानवर गांवों का रुख कर रहे हैं। इसी तरह इस आशंका में भी कुछ सच्चाई है कि मैदानी क्षेत्रों में जहां बंदर आतंक का पर्याय बने थे उनको पकड़ कर उत्तराखण्ड के जंगलों में लाकर छोड़ा गया जिससे यहां पर इनकी आबादी में बेहताशा वृद्धि हुई।

वन्य जन्तु कई प्रकार से खेती को नुकसान पहुंचा रहे हैं। कहीं मोर आदि खेतों में से बीज खा जाते हैं वहीं बंदर पौधों उखाड़ देते हैं, शाखों को तोड़ डालते हैं, फूलों के लगने पर फूलों को नुकसान पहुंचाते हैं उसके बाद फल, सब्जी, कंद या बीज जो भी लगता है उसे तक खा जाते हैं। सुअरों कुछ अलग प्रकार से नुकसान पहुंचाते हैं हालांकि बंदरों की तरह वे पेड़ों पर तो नहीं चढ़ सकते हैं किन्तु वे खेतों को इस कदर खोद डालते हैं या जमीन के नीचे सुरंगें बना डालते हैं कि खेत को ठीक करना कठिन हो जाता है। इस प्रकार से जंगली जानवरों के आतंक से लोगों की मेहनत, धन व समय बरबाद हो रहा है। जिससे कृषि हतोत्साहित हो रही है।

### **बढ़ते पलायन के कारण :**

वैसे तो पलायन एक अनवरत चलने वाला सिलसिला है और विभिन्न कारणों से लोग निवास के लिए अन्यत्र जाते ही रहते हैं। लेकिन उत्तराखण्ड के लिये पलायन एक अभिशाप बनता जा रहा है। पहाड़ में पहले पलायन इसलिए समस्या नहीं था क्योंकि यह कम संख्या में होता था। यदि किसी परिवार में चार भाई होते थे तो एक या दो ही रोजगार के लिए अन्यत्र जाया करते थे बाकी दो गांव में ही रहकर खेती किया करते थे। बाहर जाने के बाद भी व्यक्ति अपनी जड़ों से लगातार जुड़ाव रखता था। बहुत से लोग तो सेवानिवृत्ति के बाद पुनः अपने गांव आ जाते थे। पहाड़ में नौकरी करने की परम्परा काफी पहले से ही थी। खेती के अलावा आजीविका का कोई अन्य जरिया नहीं था। खेती के भी सीमित होने के कारण यहां के लोग शासकों के यहां नौकरी करना शुरू किया। अंग्रेजों के शासन के समय से यहां के लोग सेना में भर्ती होने लगे। यही सिलसिला आजादी के बाद से आज तक जारी है। फर्क इतना पड़ा है कि अब सेना के अलावा अन्य क्षेत्रों में भी लोग नौकरी कर रहे हैं, जिसमें असंगठित क्षेत्र भी शामिल है। आजीविका के लिए नौकरी पर निर्भरता के कारण ही पहाड़ की अर्थव्यवस्था को मनीआर्डर अर्थव्यवस्था भी कहा जाता है।

पहाड़ से लगातार हो रहा पलायन बु(जीवियों एवं सामाजिक सरोकारों से जुड़े लोगों के लिए हमेशा ही चिन्ता का विषय रहा है। लेखकों, कवियों एवं पत्रकारों ने समय-समय पर जहां पलायन के दुष्परिणामों पर सरकारों को चेताया है वहीं आम जनता से अपनी जन्मभूमि न छोड़ने की बार-बार अपील की है। प्रसि( लोकगायक नरेन्द्र सिंह नेगी का दो दशक पूर्व लिखा गया गीत "ये ऊंची-ऊंची डांडी-कांठी ये गैरी-गैरी रौंतेली घाटी न जा न जा युं छोड़ी की अपनी जन्म भूमि मां बोल्युं माना बोल्युं माना" उसी सलाह का हिस्सा है। उत्तराखण्ड के संदर्भ में पलायन भावनात्मक एवं सामाजिक मुद्दा न रहकर सामरिक मुद्दा भी है। इस बात पर भी लगातार चर्चाएं होती रहती हैं कि पलायन की प्रवृत्ति सांस्कृतिक विशिष्टताओं को बचाने में लगतार बाधक बनती रही है। भारत विविधतापूर्ण संस्कृतियों, समाजों और भौगोलिक अंचलों का एक खूबसूरत समागम है। भारत का भारतत्व वस्तुतः अंचलों की खुशहाली में ही निहित है। इसलिए सरहदी इलाकों से पलायन को रोकना राष्ट्रीयता को बचाने जैसा है। पहाड़ से होने वाले पलायन के कई कारण हैं, इसमें रोजगार, शिक्षा, स्वास्थ्य जैसे कारण भी हैं। जिसको निम्न तरह से समझा जा सकता है।

### **1. संयुक्त परिवारों का विखंडित होना :**

आज से डेढ़ दो दशक पूर्व तक पहाड़ में संयुक्त परिवारों का प्रचलन था। खेती एवं पशुपालन के आजीविका का मुख्य स्रोत होने के कारण संयुक्त परिवार में रहना उस दौर में मजबूरी भी थी। खेती के काम में जितने ज्यादा हाथ होते उतना ज्यादा काम होता था। संयुक्त परिवार में किसका क्या काम होगा यह परंपरागत रूप से बंटा था। मसलन बड़े बुजुर्गों का काम घर में खाना बनाना एवं छोटे बच्चों को देखना होता था तो जवान बेटे एवं बहुएं खेती एवं पशुपालन से जुड़े कार्य करते थे। लेकिन

जब खेती से आजीविका नौकरी पर शिफ्ट होने लगी तो संयुक्त परिवार विखंडित होने लगे। नौकरी में कम श्रम एवं कम जोखिम होने के कारण यहां के आदमी को नौकरी करना रास आने लगा। एक बार जो जहां नौकरी करने गया उसने पीछे मुड़कर नहीं देखा और पत्नी और बच्चों सहित वहीं चला गया।

## 2. कृषि के पैटर्न में बदलाव न आना :

आज पहाड़ में कृषि को यह कहकर अनुत्पादक ठहरा दिया गया है कि यह व्यक्ति का पेट पालने में सक्षम नहीं है। जब कि हकीकत यह है कि पहाड़ की खेती अनुत्पादक नहीं है बल्कि हमने समय की जरूरतों के हिसाब से खेती नहीं की है। हम आज भी गेहूँ चावल उगा रहे हैं। जिस लागत पर पहाड़ में गेहूँ-चावल उगाये जा रहे हैं उससे कहीं सस्ती दर पर ये बाजार में उपलब्ध हैं। दालें, फल, सब्जी उगाने के प्रयास न के बराबर हो रहे हैं जिनका कि अच्छा-खासा बाजार मूल्य है। इसलिए खेती का पैटर्न बदलकर खेती की ओर लोगों का रुझान फिर पैदा किया जा सकता है। यदि खेती की ओर लोगों का रुझान बढ़ेगा तो निश्चित तौर पर पलायन को भी रोका जा सकता है।

## 3. श्रम की अधिकता व मौसम की मार :

पहाड़ में खेती से जुड़े कामों से आजीविका चलाने में बहुत श्रम लगता है। जोतें बिखरी होने के कारण खेतों में आने जाने में ही व्यक्ति का बहुत अधिक समय नष्ट हो जाता है। खेती के वर्षा पर निर्भर होने के कारण मेहनत का फल मिलने की कोई गारंटी नहीं है। यदि बारिश समय पर नहीं हुई तो आपकी तमाम मेहनत पर पानी फिर जाता है जिससे व्यक्ति के समक्ष आजीविका का संकट पैदा हो जाता है। चूंकि पहाड़ के गांवों में खेती एवं पशुपालन के अलावा आजीविका कोई जरिया नहीं है इसलिए व्यक्ति को पलायन करने पर मजबूर हो जाता है।

इसके अलावा कि जलवायु परिवर्तन के चलते उसे जब वर्षा चाहिए तब वर्षा नहीं हो रही है और जब वर्षा नहीं चाहिए तब वर्षा हो रही है। मौसम के इस बदलते चक्र के कारण पहाड़ में खेती पर सर्वाधिक कुप्रभाव पड़ा है। क्योंकि पहाड़ में ज्यादातर वारानी खेती या वर्षा पर आधारित खेती होती है। यदि समय बारिश नहीं होती है या जरूरत से ज्यादा हो जाती है तो किसान की सारी मेहनत पर पानी फिर जाता है। गांवों में खेती एवं पशुपालन ही प्रमुख आजीविका का साधन है। यदि वह खेती छोड़ता है तो उसका प्रभाव पशुपालन पर भी होता है। ऐसे में आजीविका का कोई दूसरा विकल्प तलाशने के लिये पहाड़ का व्यक्ति पलायन के लिए मजबूर है।

## 4. शिक्षा एवं स्वास्थ्य के कारण पलायन :

पहाड़ में पलायन के लिए सरकारी नीतियां भी कम जिम्मेदार नहीं हैं। सरकार ने गांवों में स्कूल एवं अस्पताल तो खोल दिये लेकिन उनमें अध्यापक व चिकित्सक नहीं होते हैं। इस कारण से जनता का उन पर से भरोसा उठ गया है। सरकारी स्कूलों की बात करें तो उनमें पढ़ाने वाले अध्यापक ही नहीं हैं जो है भी वे सिर्फ नौकरी से अधिक कुछ नहीं करते। स्कूलों के अध्यापकों पर कई बातें थोपने से शिक्षा का बुरा हाल है। कई स्कूलों में पर्याप्त बुनियादी ढांचा ही नहीं है, जिससे वहां पठन-पाठन की व्यवस्था समय से काफी पीछे चल रही है। इस कारण लोग ऐसे सरकारी विद्यालयों में अपने बच्चों को पढ़ाने के निजी स्कूलों में पढ़ाने को तरजीह देने लगे हैं। इससे इन स्कूलों में छात्र संख्या काफी कम हो गई है। कई लोग बच्चों का पढ़ाने के लिये गांवों के लोग निकटवर्ती नगरों में पलायन कर गये हैं ताकि उनके बच्चों को अच्छी शिक्षा मिल सके लेकिन बच्चों को अच्छी शिक्षा देने के चक्कर में उनके संघर्ष बढ़ गया है। इससे भी उनके खेत बंजर रहने लगे हैं।

इसी प्रकार से गांवों में स्कूलों की तरह स्वास्थ्य सुविधाओं का भी बुरा हाल है। सरकार ने अस्पताल तो खोल दिये गये लेकिन उनमें इलाज करने वाले चिकित्सक एवं सम्बन्धित कर्मचारियों का अभाव बना है। कई चिकित्सालयों के ऐसे भी उदाहरण हैं जो सिर्फ चौकीदारों के भरोसे पर चल रहे हैं। आंगनवाड़ी, प्राथमिक विद्यालयों में विद्यार्थियों की संख्या घट रही है। गांवों में इलाज की बुनियादी सुविधाएं ही नहीं मिलने से स्वाभाविक ही है कि सक्षम व्यक्ति गांव से पलायन करेगा ही।

## 5. चकबन्दी न होने से खेतों का बंजर होना :

इसके दो मुख्य कारण रहे हैं। बिखरी खेती एवं हालातों के प्रतिकूल होने से खेत बंजर हो रहे हैं बाकी कसर नई पीढ़ी के कृषि से विमुख होने ने पूरी कर दी जब कि दूसरा कारण सुविधा व रोजगार की तलाश में पलायन। इन दोनों कारणों से खेत बंजर हो रहे हैं। यदि भूमि चेक के रूप में होती तो वह निश्चित रूप आबाद होती और वर्तमान जैसे हालात पैदा न हुये होते। पर्वतीय क्षेत्र से पलायन की सबसे अधिक मार खेती पर पड़ी है जहां साल दर साल बंजर खेतों की संख्या में इजाफा होता जा रहा है। फसलों से लहलहाते खेतों में आज झाड़ियां व पेड़ उगने लगे हैं। जो परिवार कभी दुकान से राशन नहीं लेते थे बाहर से राशन लेते दिख जायेंगे। गांव में हर घर में अन्न संचयन के लिये कोठार हुआ

करते थे लेकिन आज ज्यादातर घरों में वे खाली ही मिलेंगे। पिछली आपदा के समय जब यहां ज्यादातर सड़कें बंद हो गयी थी ता'कुछ ही दिनों में ही गांवों में खाद्यान्न संकट पैदा हो गया था। पलायन ने पहाड़ की समृ(ि को समाप्त किया है।

## 6. पलायन की खेती पर दोहरी मार :

प्राचीन समय में पहाड़ में बसासत प्रकृति प्रदत्त संसाधनों जल-जंगल-जमीन पर निर्भर करती थी। जहां भी ये संसाधन थे वहां व्यक्ति ने रहना शुरू किया। प्रकृति यहां पर समाज की सभी की जरूरतें पूरी करती थी। बदलाव के दौर में जीवनयापन के लिए प्राकृतिक संसाधनों की बजाय आज कुछ दूसरी सुविधाओं की ओर रुझान बढ़ा है। इसलिये गांव को स्वच्छ, हवा पानी जैविक उत्पाद की बजाय बिजली, सड़क, पानी, शिक्षा, स्वास्थ्य अधिक महत्वपूर्ण हो गये हैं। इसलिये जहां सुविधाएं थी वहां ज्यादा संख्या में आकर लोग आकर बसने लगे। खासतौर पर मैदानी व नदी घाटियों के क्षेत्रों में जहां ज्यादा आधुनिक सुविधाओं का तेजी से विस्तार हुआ है।

राज्य में पलायन होने की मार अन्ततोगत्वा जमीन पर ही पड़ी है। गांवों से पलायन होने से गांव की जमीन तो बंजर हुई ही बल्कि मैदानों में भवनों के निर्माण से खेती की जमीन बरबाद हो रही है। राज्य के मैदानी जिलों देहरादून, हरिद्वार, उधमसिंह नगर के मैदानी इलाके हों या नैतीताल, चम्पावत या गढ़वाल का तराई इलाके में हजारों हैक्टेयर खेती उपजाऊ और सिंचित जमीन कालोनियों या प्लॉटों में बदली है। इससे तराई में असन्तुलन पैदा होता जा रहा है। खेती के लिये प्रसि( तराई या घाटी क्षेत्र आज बरबादी की ओर बढ़ रहे हैं। नगरीकरण होने से वहां पर प्रदूषण व पेयजल सम्बन्धी दूसरी समस्यायें पैदा होने लगी हैं और इसका सीधा असर स्वास्थ्य पर हो रहा है।

पहाड़ में बागेश्वर, गौचर, उत्तरकाशी पिथौरागढ़ से जहां लोग मैदान में जा रहे हैं वहीं ग्रामीण आबादी इन नगरों में बस रही है। इससे आसपास के खेत जहां अच्छी खेती होती थी आज बस्तियां उगती जा रही है। प्राचीन समय में पहाड़ में कृषि योग्य भूमि पर भवन नहीं बनते थे। यहां पर जो भी गांव बसे हैं वे सब अनुपयोगी कृषि भूमि पर हैं। लेकिन घटियों आज जो भी भवन बन रहे हैं वे सब उपजाऊ कृषि भूमि पर बने हैं या बन रहे हैं।

उत्तराखंड अंतर्राष्ट्रीय सीमा पर बसा राज्य है जिसकी सीमायें चीन और नेपाल सीमा को छूती हैं। सरहदी इलाकों के गांवों से भारी संख्या में पलायन होना इसलिए भी चिन्ताजनक है क्यों कि ये सरहदी गांव अपरोक्ष रूप से देश की सुरक्षा में योगदान देते हैं। यहां होने वाली गतिविधियों की सूचना सरकार को मिलती रहती है। देश की सीमाओं की सुरक्षा करने तैनात सेना को सीमा पर बसे इन गांवों से ही मदद मिलती है। यदि सरहदी गांव पलायन के कारण खाली होने लगेंगे तो देश की सुरक्षा के लिये भी खतरा है।

## भूमि ह्रास :

सरकारी आंकड़ों के अनुसार राज्य के पर्वतीय क्षेत्र में मात्र 7 प्रतिशत हिस्से पर कृषि होती है। लेकिन बची खुची इस जमीन का लगातार ह्रास हो रहा है। एक ओर पलायन के कारण कृषि भूमि के बंजर छोड़ने से वह अनुपयोगी होती जा रही है और उस पर जंगल उगने लगे हैं और वह कई स्थानों में वह वन भूमि में बदल रही है। लेकिन दूसरी जगहों पर विकास के नाम पर भी बहुत जमीन बरबाद हो रही है। पलायन के कारण पहाड़ी नगरों कस्बों में जनसंख्या का बोझ बढ़ने से इनका विस्तार हो रहा है। वहां पर अवस्थापना विकास की खातिर व दूसरे कार्यों के लिये खेती की ही जमीन जाया हो रही है इससे नगरों के आसपास वह सिकुड़ चुकी है। चमोली के गौचर, उत्तरकाशी, बागेश्वर, पिथौरागढ़, चंपावत, द्वाराहाट, गरुड़ आदि जगहों पर इसे देखा जा सकता है। सड़क व बांध योजनाओं के लिये अधिग्रहण से भी वह कम हो रही है।

राज्य में बड़ी मात्रा में कृषि भूमि दबंग कम्पनियों के द्वारा बरबाद की जा रही है। बांध व सड़क योजनाओं का मलबा उंपिंग जोन में न डालकर खेतों में डालने से बड़ी संख्या में खेत बरबाद हो रहे हैं। अक्सर इन कामों में प्रभावशाली व सत्ता से जुड़े दबंग किस्म के लोगों के संलिप्त होने से जिला दरबार या राज्य सरकार के दरबार में बात अनुसनी हो जाती है। लम्बे समय से कहा जा रहा है कि सड़क निर्माण की तकनीक में बदलाव लाया जाना चाहिये। सड़कें पहले भी बनती थी लेकिन उस दौर की बनी सड़कों से कम से कम पर्यावरणीय नुकसान होता था किन्तु आज मशीनीकरण से होने वाले काम से न केवल कृषि जमीन बरबाद हो रही है बल्कि कटाव में विस्फोटकों के उपयोग से कई गांव भूस्खलन के मुहाने पर आ गये हैं। इसलिये सैकड़ों गांवों के सामने अपनी जमीन के साथ गांव के समाप्त होने का खतरा पैदा हो चुका है। सड़क योजनाओं के कारण बहुत कृषि भूमि जाया हो रही है। यदि इन सड़कों के औचित्य की समीक्षा करेंगे तो यह भी पायेंगे कि जनशून्य हो चुके गांवों के लिये भी सड़कें बन रही हैं। इसस राज्य के जंगल व जैवविविधता बरबाद हो रही है। लेकिन इसके खिलाफ आवाज उठाई जाती है तो कोई सुनने वाला नहीं है।

लेकिन अब जमीन बरबादी का अब एक और रूप बादल फटने जैसी प्राकृतिक आपदा के रूप में आम हो गया है। 2013 में बादल फटने की लगभग 50 घटनायें हुई थी तो इस साल 20 घटनायें। इसे राज्य में काफी कृषि जमीन बरबाद हो गई। कहने को तो यह आपदा है किन्तु पहले ऐसा नहीं होता था। इसे मानव द्वारा प्रकृति के साथ किये गये व्यवहार का प्रतिफल ही माना जा रहा है।

### घटते शिल्प एवं शिल्पी :

किसी भी क्षेत्र के विकास में वहां के शिल्प और शिल्पियों की महत्वपूर्ण भूमिका होती है। उत्तराखण्ड में भी शिल्प की समृद्ध परम्परा रही है, लेकिन आज विभिन्न क्षेत्रों में आधुनिक तकनीकी के प्रवेश, बाजारवाद और वैश्वीकरण के बढ़ते प्रभाव के कारण उत्तराखण्ड का परम्परागत शिल्प व शिल्पी लगभग विलुप्त होने के कगार पर हैं।

प्राचीन सभ्यता और संस्कृति के विकास का आधार यहां का शिल्प ही था। इसने यहां के लोकजीवन को न केवल अधिक सुविधा सम्पन्न बनाया बल्कि यहां के जनजीवन में घुलने मिलने के कारण यह जीवन का एक सार्थक और महत्वपूर्ण भाग बन गया था। पश्चिमी देशों से आयातित आधुनिक तकनीक के पहाड़ में पैर जमाने के कुछ ही वर्ष पूर्व तक पहाड़ी शिल्प पूरे वैभव के साथ लोगों के जीवन से जुड़ा रहा, लेकिन हमारे इस बाहरी व पश्चात्य शिल्प के प्रवेश करते ही सस्ता व सुलभ होने से परम्परागत पहाड़ी शिल्प पर संकट में आ गया। आधुनिक शिल्प सस्ता तो है किन्तु उसमें वह आत्मीयता व अपनापन नहीं है जो एक जमाने में कठोर परिश्रम से हमारे शिल्पियों द्वारा निर्मित किया जाता था।

### 1- लुप्त होती भवनकला एवं काष्ठ शिल्प :

उत्तराखण्ड के लोगों को अनेकों संघर्षों से गुजर कर यहां तक पहुंचे हैं। गढ़पतियों और उनके बाद राजशाही के उत्थान और पतन के साथ ही यहां के शिल्प के उत्थान व पतन की कहानी भी छिपी है। राजशाही के समय यहां की शिल्पकला व शिल्पियों राजाश्रय मिलने से यह खूब फली-फूली किन्तु सन् 1803 से 1815 तक गोरखाओं के शासन में गढ़वाल में यहां के शिल्प को अभूतपूर्व क्षति उठानी पड़ी थी। गढ़वाल की राजधानी चांदपुर गढ़ी के भग्नावशेषों को देखकर भी यह तथ्य प्रमाणित होता है कि उस जमाने में भी पहाड़ का प्रस्तर शिल्प अपनी उन्नति के शिखर पर था।

अपने इसी हुनर के कारण शिल्पियों को समाज में खासा मान-सम्मान भी प्राप्त था। उस समय भवन, मंदिर, मूर्ति, काष्ठ, धातु, आभूषण, परिधान शिल्प के साथ ही रिंगाल व अन्य चीजों से बनाई जाने वाली वस्तुओं की यहां काफी मांग थी।

उत्तराखण्ड की गृह निर्माण कला बेजोड़ थी। उत्तराखण्ड ही ऐसा मुल्क था जहां गृह निर्माण शिल्प अत्यन्त उन्नत था। गढ़वाल में आज भी दरवाजे, खिड़की, चौखट, महाराब, खम्भे, ब्रैकेटस से लेकर तिवारी, खोली और नीमदारी तक भवन निर्माण में प्रयुक्त उन्नत काष्ठ शिल्प की अनूठी कलाकृतियों के दर्शन होते हैं। भवन निर्माण में प्रयुक्त काष्ठ शिल्प पर देवी देवताओं, मानवाकृतियों, सजावटी बेल-बूटे, पशु-पक्षी और पेड़-पौधों को सुन्दर ढंग से चित्रित किया जाता था। रवाई एवं जौनसार-बाबर सहित कुछ क्षेत्रों में तो आज भी कई शिल्पी लकड़ियों से बने मकानों बना रहे हैं। इस तरह की अपनी अनूठी बेजोड़ कला अन्यत्र नहीं दिखती है। निःसन्देह, उत्तराखण्ड में इस तरह के भवन निर्माण के अन्तर्गत होने वाली बेजोड़ नक्काशी का कोई जबाब नहीं है।

दुर्भाग्य से राज्य बनने के बाद उत्तराखण्ड की भवन निर्माण कला को बचाने के प्रयास न होने और पलायन के चलते इनका धीरे-धीरे लोप होता चला गया और आज पहाड़ में राजमिस्त्रियों की संख्या उंगलियों पर गिनने लायक भी नहीं बची है। किसी जमाने में यहां की इस विशिष्ट भवन निर्माण शैली को उन्होंने ही उत्कृष्टता प्रदान की। बदलती जीवन शैली में अब पत्थरों का पठाल या स्लेट का स्थान ईंट-गारा व सीमेंट ने तथा लकड़ी का काम लोहे, सीमेंट, सरिया ने ले लिया है जबकि वर्षों पूर्व पहाड़ में तरासे गये पत्थरों से बेहतरीन भवन आज भी खड़े हैं। अंग्रेजों के जमाने में भी पहाड़ में राजमिस्त्रियों ने भव्य बंगले बनाये लेकिन आज यह कला विलुप्त होने के कगार पर है।

यहां पर जो भी निर्माण हो रहा है वह हमारे यहां के मिस्त्री नहीं बल्कि बिहारी मिस्त्री कर रहे हैं। जिनके लिये उत्तराखण्ड एक प्रयोगशाला बना है। बिहारी मिस्त्री आज यहां के गांव-गांव में फैल चुके हैं। सुदूरवर्ती क्षेत्रों को छोड़कर पहाड़ में परम्परागत मकान बनने बंद हो गये हैं। आधुनिक शैली के रिहायशी मकानों ने हमारी समृद्ध परम्परा व उस पुरातन जीवन शैली को ही लील दिया जिसमें न तो वह पहाड़ीपन है और न अपनापन ही। एक समय गांवों में हर घर की छत पर पठालों का उपयोग होता था जो दूर-दूर से मंगाई जाती थीं। किन्तु आज कोई भी व्यक्ति अपनी छतों पर स्लेट लगाना पसंद नहीं करता, यह बात और है कि दूरस्थ ग्रामीण क्षेत्रों में आज भी अनेक जगहों इनका प्रयोग होता है लेकिन इन क्षेत्रों में मोटर मार्गों के पहुंचने के साथ ही धीरे-धीरे इनका उपयोग में बने रहना संभव नहीं लगता है।

## लुप्त होता मूर्ति एवं प्रस्तर शिल्प :

शताब्दियों पूर्व यहां मंदिर व मूर्ति शिल्प अपने चरम वैभव पर था। उत्तराखण्ड में मंदिरों की अधिकता व भव्यता के कारण ही इस क्षेत्र को देवभूमि के नाम से जाना गया था। आठवीं से लेकर चौदहवीं सदी विक्रमी तक का काल पहाड़ में मंदिर वास्तु शिल्प का उत्कृष्ट काल बताया जाता है। गोपेश्वर, लाखामण्डल, पैठाणी, मृत्युंजय-जागेश्वर के शिव मंदिर, नव दुर्गा मंदिर जागेश्वर और राजराजेश्वरी मंदिर, राणीहाट के शक्ति मंदिर, रघुनाथ मंदिर देवप्रयाग, पलेटी और कटारमल के सूर्य मंदिर आदि विभिन्न मंदिर शैलियों में विभिन्न काल खण्डों में बनाये गये। उत्तराखण्ड में मंदिर व मूर्ति कला से सम्बन्धित वह प्राचीन शिल्प अब प्रचलन से बाहर हो गया है। पहाड़ में आज इस काम को करने वाले दो-चार शिल्पी भी मुश्किल से ढूँढ कर मिलेंगे।

प्रस्तर शिल्प में आज घराट, जन्दरा, सिलबट्टा, खोली, मोरी, पन्देरा, धारे, वाबड़ी, छज्जा आदि अनेक वस्तुओं के अलावा मकानों के छत पर लगाने वाली स्लेट या पठाल भी धीरे-धीरे अनुपयोगी हो गई है। इन सभी के स्थान पर आधुनिक विकल्प का प्रयोग होने के कारण इनके अस्तित्व पर संकट छा गया है। इनके निर्माण में लगे शिल्पी बेरोजगार हो गये हैं। पूरे उत्तराखण्ड के कुछ इलाकों को छोड़कर आज घराट कहीं नहीं मिलते, इसी तरह घरेलू उपयोग में आने वाली जन्दरें भी आज खत्म हो गये हैं, इनका उपयोग करने वाले लोगों का प्रतिशत साल दर साल कम होकर समाप्त होता जा रहा है। हां, सिलबट्टे का उपयोग आज भी गांवों में बरकरार है इसके स्थान पर मिक्सी आदि का प्रचलन घरों में होने के बावजूद लोग इसे अभी भी पसंद करते हैं लेकिन इसकी घटती बिक्री से यह स्पष्ट है कि पत्थरों से बने सिलबट्टे उतने लोकप्रिय नहीं रह गये हैं। गृह निर्माण के अतिरिक्त काष्ठ शिल्प के तहत ही पहाड़ में दैनिक उपयोग की अन्य अनेक वस्तुओं का निर्माण हमारे शिल्पियों द्वारा किया जाता था। बर्तनों से लेकर तेल चक्की, घराट और कृषि उपकरणों का निर्माण इन काष्ठशिल्पियों के द्वारा किया जाता था। कृषि यन्त्रों में अधिकांश यन्त्रों का निर्माण तो गांवों में आज भी होता आ रहा है लेकिन अन्य चीजें धीरे-धीरे बीते जमाने की बातें हो गई हैं।

## घटता धातु शिल्प :

धातु शिल्प का भी यहां पर प्राचीन काल से ही महत्व रहा है, विभिन्न धातुओं के शिल्पियों को पहाड़ में पुराने जमाने से ही विभिन्न नामों मसलन लोहे का कार्य करने वाले को लोहार, सोने-चांदी का कार्य करने वाले को स्वर्णकार, तांबा और काँस्य का काम करने वालों को टम्टा कहा जाता था। पहाड़ में इन विभिन्न धातुओं के शिल्पियों को यथोचित सम्मान प्राप्त था। खेती के औजारों से लेकर यु( और आखेट के लिये हथियार बनाने में ये शिल्पी सि(हस्त होते थे यहीं नहीं बल्कि विभिन्न वाद्ययन्त्रों का निर्माण भी इनके द्वारा किया जाता था। प्राचीन राजाओं और गढ़पतियों द्वारा इन्हें आश्रय भी दिया जाता था। अन्य शिल्पों की तरह उत्तराखण्ड में धातु शिल्प का भी तेजी से हास हुआ है। आज ढोल-दमाऊं आदि परम्परागत वाद्ययन्त्र गढ़वाल में श्रीनगर के अलावा शायद ही कहीं गढ़े जाते हों। इसी तरह इन्हें बजाने वाले ढोल सागर के ज्ञाता भी आज बहुत कम हैं।

## सिमटता वस्त्र शिल्प :

आभूषण और परिधान शिल्प में भी पहाड़ के पुराने शिल्पियों की कला देखने से यह स्पष्ट होता है कि उपलब्ध संसाधनों व जानकारी के हिसाब से अपने जमाने में इन्होंने बेहतरीन आभूषण और परिधानों का निर्माण करने का प्रयास किया था। परिधानों में ऊनी वस्त्रों का अधिक महत्व देने का कारण यहां का पहाड़ी परिवेश और भौगोलिक स्थितियां थीं। ऊनी वस्त्रों के लिये कच्चा माल यानि ऊन यहां परम्परागत भेड़ पालन व्यवसाय के कारण आसानी से उपलब्ध थी। इन वस्त्रों में गढ़वाल में त्यूंथा, मिरजई, फतूगी, अगड़ी, लवा, कम्बल, टोपी आदि आज बीते जमाने की बात हो गई है। कालीन और दन बनाने में भी यहां के कारीगर निपुण थे। तीन-चार दशकों पूर्व ही पहाड़ के गांव-गांव में इस प्रकार के परिधानों का निर्माण करने वाले शिल्पी प्रचुर मात्रा में मिल जाते थे लेकिन बदलते परिवेश में ना तो वे बुनकर रहे और ना ही उनके ताने बाने कहीं नजर आते हैं। अब भेड़पालन गांवों में खत्म होने के कगार पर है केवल जनजाति क्षेत्रों में जहां भेड़ पालन होता है वहां आज भी नाममात्र के ऊनी परिधान तैयार किये जाते हैं लेकिन आज इनमें लगाने वाली मेहनत और इससे मिलने वाली कम कीमत तथा बाजार में सस्ता कपड़ा उपलब्ध होने से इन परिधानों का प्रचलन लगभग खत्म हो गया है। वहीं कालीन, गलीचे, ऊनी कम्बल, चुटके, थुलमे जैसे हस्तशिल्प की परम्परा तिब्बत की सीमा से करीब होने तथा स्थानीय जरूरतों के कारण घर-घर में पनप रही थी आज सिमटती जा रही है।

## कम होता स्थानीय आभूषण शिल्प :

आभूषण शिल्प में नये-नये प्रयोगों के कारण यहां के पुराने आभूषण गायब हो चुके हैं। आज चांदी के आभूषणों के स्थान पर सोने के आभूषणों को प्रमुखता मिल रही है। पहाड़ में वर्षों पूर्व सोने से अधिक चांदी के आभूषणों का प्रचलन अधिक था। सोने के आभूषणों में पहले नथ, बुलॉक, फूली, गौरण वाली

और मुरथलों का ही प्रचलन अधिक था फिर विसार और गुलबंद भी प्रचलन में आया। अन्य गहनों में यहां चांदी को विशेष महत्व प्राप्त था। चांदी के गहनों में लच्छा, छिंबरा, पोंटा, मुरबुला, कर्णफूल, शीषफूल, करघनी, स्यूडा, चांदी की चूड़ी, पौंछी, थगुला, थगुली, बीडी-बाकई, हंसला, छुपकी, करेला की माला, चंद्रहार, रुपयों की माला आदि आज लगभग पुरानी धरोहर की चीजें हो गई हैं। सूदूरवर्ती इलाकों में आज भी बुजुर्ग महिलाएं इनमें कुछ चांदी के आभूषणों को पहने हुए मिल जायंगी लेकिन इन इलाकों में भी आधुनिक स्वर्णाभूषणों के बढ़ते प्रचलन के कारण इन पुराने गहनों का अब महत्व खत्म हो गया है। एक जमाने में गढ़वाल में टिहरी नथ का खूब प्रचलन था लेकिन अब इसके प्रति भी लोगों में आकर्षण लगभग खत्म हो गया है लोगों के सम्मुख आज पूरे भारतीय स्वर्णाभूषणों का बाजार खुला है। आज स्वर्णकार भी केवल प्रचलन में होने वाले सोने चांदी के आभूषणों को ही ढालते हैं इसलिये पुराने आभूषणों के शिल्पी भी अब नाम मात्र ही हैं। इस प्रकार हमारी यह प्राचीन समृद्धि (आभूषणों की परम्परा भी आज अपनी अंतिम सांसें गिन रही है।

### घट्टा रिंगाल एवं बांस शिल्प :

रिंगाल से बनी वस्तुओं का तो पहाड़ के लोक जीवन में अपना विशिष्ट स्थान रहा है। पहाड़ में एक जाति विशेष के लोग जिन्हें 'रुड्या' कहते हैं, का रिंगाल से जुड़े शिल्प का विशेष ज्ञान रहा है। ये रिंगाल शिल्पी रिंगाल से कड़िया, सूप, टोकरियां, बड़े टोकरे, चटाईयां और अनाज रखने के लिये बड़े कुन्ने बनाते हैं। रुड्या जाति के लोग पहले पहाड़ के लगभग प्रत्येक गांव में मिल जाते थे आज मशीनों से बनी कलात्मक वस्तुओं ने इनके शिल्प को लील डाला है जिससे इनके सामने रोजी रोटी की समस्या खड़ी हो गई है। फलस्वरूप इन्होंने अपने जीविकोपार्जन के तौर तरीके भी बदल दिये हैं। अब कुछ क्षेत्रों को छोड़कर पहाड़ के शेष इलाकों से इस पेशे के लोगों ने अपना यह व्यवसाय समेट लिया है। पीपलकोटी और जोशीमठ के बीच रुड्या लोग आज भी रिंगाल का व्यवसाय करते हैं। बदरीनाथ यात्रा मार्ग पर पीपलकोटी, टंगणी से पातालगंगा में रिंगाल से बनी टोकरियां व अन्य सामान की दुकानें दिखाई देती हैं। यात्रा सीजन में रिंगाल से बनी टोकरियां देशी विदेशी पर्यटकों के लिये आकर्षण का केन्द्र बनी रहती हैं। इसी तरह बांस व रिंगाल से बनी कंधियां वादी जाति के लोग गांव-गांव में बेचा करते थे। बागेश्वर एवं पिथौरागढ़ जिलों में बांस व रिंगाल के शिल्पी इस कार्य को कर रहे हैं। पर अब इनकी बिक्री वैसी नहीं रही। तो दूसरी ओर रिंगाल तथा बांस के बने डोके, डलिया, टोकरियां, सूप आदि आम जन की रोजमर्रा की जिन्दगी की अनिवार्य वस्तु हो जाने के कारण इनकी निर्माण विधा स्थानीय उद्योग के रूप में विकसित हुई। कभी कुमैयां भदले, लोहे की कढ़ाई-रुद्ध लोहाघाट का प्रमुख उद्योग था। स्थानीय स्तर पर उपलब्ध पेड़-पौधा से रेशे निकाल कर वस्त्र बनाने भी काश्चुपक्रम था। इनमें से कई उद्योग या तो धीरे-धीरे समाप्त हो गये या फिर भी कुछ उद्योग ऐसे हैं जो केवल कहीं-कहीं गाँव देहात में जैसे-तैसे अपने को बचाये हुए हैं।

यदि यहां गांव आबाद होते तो यह सब कुटीर शिल्प यहां पर चल रहे होते और इनमें आज हजारों हाथों को काम मिला होता और यह यहां की स्थानीय आर्थिकी को मजबूत कर रहे होते। परन्तु बंजर खेतों और खण्डहर गांवों के कारण यह सब तिल-तिल समाप्त हो रहा है। गांव के आबाद होने आबाद पर इसके लौटने की उम्मीद की जा सकती है। पर अनिवार्य चकबन्दी के बगैर यह कठिन लगता है। जब तक जमीन के प्रति मोह पैदा करने के कारक सक्रिय न होंगे तक तक पुराने दिनों की बस कल्पना ही की जा सकती है।

## जमीन की माप की पुरानी इकाइयां

आज जमीन की माप हैक्टेयर में होने लगी है किन्तु ब्रिटिशकाल में जमीन की माप के लिये अलग अलग इकाइयां प्रचलित थीं। लेकिन काफी समय तक भूमि की माप के लिये बीज की वह मात्रा गिनी जाती थी जो उस जमीन में बोने के लिये उपयुक्त समझी जाती थी। इसलिये माप की इकाई का क्षेत्रफल जमीन की किस्म के अनुरूप कम या ज्यादा हुआ करता था। जमीन के क्षेत्रफल के बारे में यह अस्पष्टता और ज्यादा दुविधापूर्ण हो जाती थी क्योंकि सार्वजनिक सेवा में लगे कर्मचारियों को उनका पारिश्रमिक जमीन के रूप में दिया जाता था। माप की इकाइयों में कुमाऊं में बीसो का प्रयोग होता था। सामान्य उपयोग में अन्य गणना इकाई पूला या बिल्का थी। पूला या फसल का तना सहित सफेद गट्टर जितने उस जमीन में पैदा होते थे वह उतने पूला जमीन मानी जाती थी। यह नाली का एक नाली का एक भाग था और नाली स्वयं में बीसी का हिस्सा होती थी। कुमाऊं के अलग अलग इलाकों में तब माप के लिये निम्नलिखित इकाइयों का प्रयोग होता था। वहीं गढ़वाल में माप की इकाई झूला थी और यहां पर यह माप इस बात पर निर्भर करती थी कि जमीन का धारक कौन है। इस प्रकार से इस प्रकार झूला माप असमान होती थी। कालान्तर में इस भूमि परिमाप को मानकीकृत किया गया और यह वर्ग गज में मापी जाने लगी। हर बीसी में 240 वर्ग गज की 20 नाली जमीन यानि 4800 वर्ग गज तय कर दिया गया।

• झूला	—	3 से 12 बीसी
• भारा	—	2.5 बीसी
• अंस	—	2.1 बीसी
• आली	—	2.5 बीसी
• बीसा	—	4.0 बीसी
• नाली	—	0.5 बीसी
• टका	—	0.5 बीसी
• माशा	—	0.75 बीसी
• रीणी	—	1.00 बीसी

# बदल सकती है तस्वीर चकबन्दी से

## भूमि सुधार की उपयोगिता :

भूमि सुधार एक व्यापक विषय है और चकबन्दी इसका एक महत्वपूर्ण हिस्सा है। स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद भूमि सुधार सरकार की प्राथमिकता में रहा है। इसके जरिये भूमि स्वामित्व के पुराने सामन्तवादी सामाजिक ढांचे को समाप्त करने, काश्तकारी की सुरक्षा उपलब्ध कराकर शोषण को रोकने तथा काश्तकारों और बढाईदारों के लिये लगान को नियमित करना, किसान और राज्य के बीच सीधा सम्बन्ध स्थापित करना तथा पुनः वितरण के उपायों द्वारा भूमिहीनों को सामाजिक तथा आर्थिक स्तर प्रदान करना था।

इसके मूल में कृषि उत्पादकता में वृद्धि करन और आधुनिकीकरण अनिवार्य घटक माने गये। जोतों की चकबन्दी, काश्तकारी विनियमन और काश्तकारों तथा बढाईदारों को स्वामित्व को अधिकार देकर तथा भूमि रिकार्डों को अद्यतन बनाने से छोटे तथा सीमान्त किसानों को उन्नत किस्म की टैक्नोलॉजी का माहौल बनाना ही रहा। स्वतंत्रता प्राप्ति से इस क्षेत्र में निःसन्देह काफी काम हुआ है, किन्तु यह काम अभी पूरा नहीं है। कई राज्यों भूमि सुधार कार्यक्रमों में पीछे रहे हैं। इन सुधारों के पीछे निम्नलिखित दूरगामी उद्देश्य थे –

- बिचौलिया काश्तकारी का उन्मूलन।
- काश्तकारों तथा बढाईदारों को काश्तकारी की सुरक्षा तथा काश्तकारों का स्वामित्व के अधिकार दिलाने के मूल उद्देश्य से लगान का विनियमन।
- कृषि भूमि जोतों पर अधिकतम सीमा लगाना तथा भूमिहीन कृषि मजदूरों और छोटी भूमि जोतों के धारकों को बेकार भूमि का वितरण।
- जोतों की चकबन्दी।
- भूमि रिकार्डों का रख-रखाव और उन्हें अद्यतन बनाना।
- इन उद्देश्यों के अनुसरण में, 1950 के दशक के शुरू में ही लगभग सारे देश में विधायी उपाय लागू किए गए हैं। संविधान के अनुच्छेद 31-ख के अंतर्गत संरक्षण देते हुए संविधान की नवीं अनुसूची में भूमि सुधार से सम्बन्धित 224 कानूनों को भी शामिल किया गया।
  1. छठवीं पंचवर्षीय योजना में यह परिकल्पना की गई थी कि काश्तकारों को स्वामित्व के अधिकार देने के लिए सारे राज्यों में 1981-82 से विधायी उपाय आरम्भ किए जायेंगे और अधिकतम सीमा से अतिरिक्त भूमि को प्राप्त करने तथा उसके वितरण का कार्यक्रम 1982-83 तक पूरा हो जायेगा। 1985 तक एक चरणबद्ध तरीके से भूमि रिकार्डों का संकलन उन्हें अद्यतन बनाने का काम पूरा हो जाएगा और सभी राज्यों में सिंचाई परियोजनाओं की कमान क्षेत्रों को दी गई प्राथमिकता सहित इसे 10 वर्षों में पूरा करने के उद्देश्य से जोतों की चकबन्दी का काम आरम्भ किया जाएगा।
  2. सातवीं पंचवर्षीय योजना में यह बल दिया गया है कि भूमि सुधार उपायों को गरीबी निवारण नीति के मूलभूत अंग के रूप में समझा जाना चाहिए और अन्य ग्रामीण विकास कार्यक्रमों के साथ एक संयुक्त गतिविधि के रूप में लिया जाना चाहिए जैसे कि समन्वित ग्रामीण विकास कार्यक्रम के अन्तर्गत परिसम्पत्तियां प्राप्त करने के लिए भूमि आधार प्रदान करना और जवाहर रोजगार योजना के अंतर्गत वितरित बेकार भूमि के लिए अथवा उस भूमि जिसके काश्तकार अथवा बढाईदार स्वामी बन गए हैं, का विकास करना। भूमि सुधार उपायों को सख्ती से लागू करना।
  3. जमींदारियां, जागीरें, इनाम आदि जैसी बिचौलिया काश्तकारियों जो देश के लगभग 40 प्रतिशत क्षेत्र में व्याप्त थी, समाप्त कर दी गई है। इन उपायों के परिणाम स्वरूप 20 मिलियन से अधिक काश्तकारों को सीधे राज्य के सम्पर्क में लाया गया है। जिसका अधिकांश भाग भूमिहीनों तथा सीमान्त भूमिधारकों को वितरित किया गया है।
- 4. काश्तकारों को स्वामित्व के अधिकार दिलाने अथवा भूमि स्वामियों को उचित मुआवजे का भुगतान करने पर काश्तकारों को स्वामित्व के अधिकार प्राप्त करने की अनुमति देने के लिए देश के व्यापक क्षेत्रों में विधायी प्रावधान किए गए हैं। 7.72 मिलियन काश्तकारों को लगभग 13.84 मिलियन एकड़ भूमि का स्वामित्व प्राप्त हुआ है।
- 5. भूमि सुधार का एक मुख्य उद्देश्य अनुपस्थित भूमि स्वामित्व को समाप्त करना और भूमि जोतने वाले को उसका मालिक बनाना है।
- 6. मुख्यमंत्रियों के सम्मेलन के बाद 1972 में भूमि की अधिकतम सीमा सम्बन्धी राष्ट्रीय मार्गदर्शिकायें तैयार की गई थीं। इन मार्गदर्शिकाओं में की गई सिफारिशों के अनुसार एक परिवार के लिए लागू अधिकतम सीमा की दर एक वर्ष में कम से कम दो फसलें देने की क्षमता रखने वाली सर्वोत्तम किस्म

की भूमि के लिए 10 से 18 एकड़ रखी गयी है और शुष्क भूमि तथा कुछ एक प्रकार के बागानों के लिए 54 एकड़ रखी गयी है।

7. चूंकि बेकार भूमि के लाभार्थी अधिकतर गरीब लोग हैं और इस भूमि में से अधिकांश भूमि खराब होने की वजह से उसका विकास किए जाने की आवश्यकता है ताकि वह कृषि योग्य बन सके।
8. कृषि में कार्यकुशलता और किफायत के लिए विखण्डित जोतों की चकबन्दी को एक आवश्यक शर्त माना गया है। जोतों की चकबन्दी पहले पंजाब और हरियाणा में सभी व्यावहारिक उद्देश्यों के लिए पूरी की गई और इसके बाद उत्तर प्रदेश में हुई। ज्यादातर राज्यों में चकबन्दी लागू करने के लिए विधायी प्रावधान कर अनिवार्य चकबन्दी लागू की गई। गुजरात, हिमाचल प्रदेश और महाराष्ट्र में भी इसे व्यावहारिक तौर पर स्वैच्छिक बनाया गया है। भूमि की उत्पादकता बढ़ाने पर बल देने से चकबन्दी को पहले से अधिक आवश्यक माना गया है।
9. जोतों की चकबन्दी के विरुद्ध भी कुछ तर्क दिये जाते हैं मसलन बाढ़ और अन्य प्राकृतिक आपदाओं का कारण भी विखण्डित टुकड़ों में भूमि रखने का अपना लाभ है। यदि भूमि कटाव में बहेगी तो कुछ भी बच जायेगी। इसी प्रकार इस बात का भय कि बड़े किसान को ही इसका लाभ होगा, विशेषकर जब भूमि समरूप नहीं है।
10. राज्यों को यह सुझाव दिया गया है कि वे लोगो को कार्यक्रम के लाभों से अवगत करायें। शिकायतों को निष्पक्षता से और तत्काल निपटाने के लिए चकबन्दी के कार्य हेतु वरिष्ठ अनुभवी अधिकारियों को तैनात किया जाना चाहिए।

11. चकबन्दी के लिए काश्तकारी की सुरक्षा हेतु एक आवश्यक पूर्व शर्त भूमि रिकार्डों का सही और अद्यतन होना है। अधिकांश राज्यों में संशोधन, सर्वेक्षण और बन्दोबस्त कार्य अभी शुरू किए जाने हैं।

12. सुधार कार्यक्रम के तहत ही देश भर में भूमि रिकार्डों के कम्प्यूटरीकरण किया गया।

कानूनो में अनेक खामियों का होना, अपर्याप्त प्रशासनिक तंत्र, लम्बी अवधि तक मुकदमेबाजी का चलना, मुकदमें लड़ने के लिये ग्रामीण गरीबों की अक्षमता, अपने अधिकारों के प्रति उनका सचेत न होना, कार्यक्रम को पर्याप्त महत्व न देना, तथा राज्य स्तर पर भूमि सुधार कार्यक्रमों की नियमित निगरानी में कमी होना इसकी कुछ बाधाएँ हैं जिनको राष्ट्रीय स्तर से भी दूर करने की आवश्यकता है।

### **कैसे कारगर हो सकती है चकबन्दी?**

यहां की बिखरी भूमि की समस्या न तो यह राज्य भी हिमाचल की तरह सम्पन्न हो सकती है। इससे राज्य के ग्रामीण अंचल में लाखों परिवारों पूर्ण रूप से कृषि भूमि को उत्पादनोन्मुखी बना कर स्वरोजगार व आमदनी कमा सकते हैं। चक होने पर भूस्वामी अपनी जमीन के अनुसार चक में अपनी सोच, सुविधा, योग्यता, सामर्थ्य और आवश्यकतानुरूप योजना बना सकता है। यहां पर भी वैज्ञानिक तरीके से लाभकारी खेती, बागवानी, पशुपालन, कृषि वानिकी आदि का काम कर सकता है। इससे अनुसूचित जाति-जनजाति के भूमिहीनों को भी भू-स्वामित्व का अधिकार मिल सकता है। यहां के काश्तकार, शिल्पकार एवं दस्तकार अपने पुश्तैनी कार्य में जुट सकते हैं, महिलाओं पर से काम का बोझ कम हो सकता है व उनकी आय में भी वृद्धि हो सकती है।

इससे परिवार में बंटवारे-संटवारे, क्रय-विक्रय संजायती खाते सम्बन्धी भूमि विवाद समाप्त हो सकते हैं, भूमि व जल संरक्षण तथा पर्यावरण व विकास कार्यों में जनता की स्वैच्छिक भागीदारी हो सकती है। यहां के लोक संस्कार, संस्कृति, बोली-भाषा, रिश्ते नाते तथा गांव व खेती व बीज सुरक्षित रह सकते हैं। यहां के लोगों की पहचान व हैसियत की सुरक्षा हो सकती है और ग्रामीण युवाओं को सही दिशा मिल सकती है। बच्चों के घर से न भागने से बाल मजदूरी भी कम हो सकती है। किसान कृषि अनुदान व आधुनिक तकनीक का लाभ उठा सकता है। राज्य के पर्वतीय क्षेत्र के कृषि उत्पादों की पहचान बन सकती है, सहकारिता स्तर पर काम हो सकता है। जड़ी बूटी, पुष्पोत्पादन सगन्ध पादप उत्पादन, मसाला उत्पादन की राह निकल सकती है। कृषि उत्पादन में लगभग कई गुना वृद्धि हो सकती है। इससे किसान की क्रय शक्ति बढ़ सकती है, ग्रामीण समाज में आशा, उत्साह व विश्वास का वातावरण पैदा हो सकता है, और सबसे प्रमुख उस पृथक पहाड़ी राज्य का सपना साकार हो सकता है जिसका सपना गांव वालों ने भी देखा था। सवाल यह है कि जब मैदानी भाग में भूमि के सुनियोजित उपयोग के लिये चकबन्दी की जा सकती है तो पहाड़ की भूमि के सम्बन्ध में क्या ऐसा रास्ता नहीं निकाला जा सकता है? इस बात को सब जानते हैं कि उ.प्र. में हरित क्रान्ति की सफलता के पीछे चकबन्दी ही मुख्य कारक था। उत्तरांचल जैसे छोटे नवोदित राज्य के आर्थिक विकास के लिए आज सबसे बड़ी जरूरत

राज्य की प्रति व्यक्ति आय बढ़ाने, कृषि व्यवस्था सुधारने, पलायन रोकने आदि की है और इन सभी बातों का एक ही निदान है "चकबन्दी"।

चकबन्दी से कई समस्याओं का स्वतः समाधान हो सकता है। इससे यहां पर कृषि व ग्रामीण विकास को सही दिशा मिल सकती है। गांव, खेत व किसान आबाद होते हैं तो इससे मंहगाई, बेरोजगारी व पलायन पर विराम लग सकता है। गांव में रोजगार मिलने सामाजिक वातावरण सुधर सकता है और हताशा कम हो सकती है। गांव के प्रति सामूहिक जिम्मेवारी के अहसास होने से वृक्षारोपण व पर्यावरण के प्रति रुचि बढ़ सकती है। कुल मिलाकर राज्य की संस्कृति, पहचान व अस्तित्व का संकट भी न होगा और पहाड़ी राज्य का सपना सच्चे अर्थों में साकार हो सकता है। यदि सरकार वातावरण बनाये और चकबन्दी की मूल भावना के अनुसार आगे बढ़े तो इसके सकारात्मक परिणाम दिख सकते हैं। हिमाचल प्रदेश आज कृषि व बागवानी क्षेत्र में हमसे कई गुना काफी आगे है और यही कारण रहा है कि वहां से पलायन बिल्कुल भी नहीं हुआ।

जनपद पौड़ी गढ़वाल का उदाहरण लिया जा सकता है जो कि राज्य में लायन से सबसे अधिक जूझ रहा है। कृषि विभाग के आंकड़ों के अनुसार जिले में एक लाख तैतीस हजार हैक्टेयर अर्थात् 66 लाख 50 हजार नाली कृषि योग्य भूमि है। जनपद में 15 ब्लाक और लगभग 1200 ग्राम सभायें हैं यानि औसतन एक ब्लाक में 8866 हैक्टेयर और एक ग्राम सभा 110 हैक्टेयर अर्थात् 1 ब्लाक में 4 लाख 42 हजार 360 नाली और एक ग्राम सभा में 5500 नाली कृषि भूमि मौजूद है।

अगर जनपद में चकबन्दी कार्यक्रम चलाकर भूमि सुधार होता है तो एक परिवार के हिस्से 50 नाली भूमि का चक होगा। इस तरह से एक ग्रामसभा में लगभग 100 परिवारों तथा एक ब्लाक में 8876 परिवारों और जनपद में एक लाख 33 हजार परिवारों को सीधे खेती पर ही रोजगार दिया जा सकता है। राज्य के दूसरे जिलों में भी ऐसा ही हो सकता है। आय के लिये परम्परागत खेती पैटर्न में बदलाव लाकर यदि हम आगे बढ़ें तो कई प्रकार की फसलों अच्छी आय कमाई जा सकती है। उदाहरण के लिये यदि कोई बागवानी को अपना लक्ष्य बनाता है और वैज्ञानिक तरीके से काम करता है तो एक नाली भूमि में कम से कम 10 तक फलदार पौधे उगाये जा सकते हैं। अगर साल में एक पेड़ औसतन 1000 रुपये के फल देता है तो 10 पेड़ों अर्थात् 1 नाली भूमि से 10000 रुपयों की आय प्राप्त हो सकती है। सीधे शब्दों में 50 नाली यानि एक हैक्टेयर भूमि में का बागान जिसमें 500 पेड़ हो सालाना 5.0 लाख रुपये की आय दे सकता है। यदि 40 प्रतिशत धन इसके रख-रखाव और देखभाल पर पर भी खर्च हुआ तब भी इस कार्य से 3.0 लाख तक की आय हो सकती है। इस तरह इन खेतों से ही औसतन एक ग्रामसभा में लगभग कई करोड़ लाख रुपये के फल उत्पादित हो सकते हैं।

अच्छे फलोत्पादन से उनके जूस, जैम, मुरब्बा, अचार आदि बनाने के लिये एक ग्रामसभा में कम से कम 2-3 कुटीर उद्योग चल सकते हैं और उनमें कम से कम 1 दर्जन परिवारों के लिये काम निकल सकता है। इस काम में इन उत्पादों के विपणन से लेकर इन कुटीर उद्योगों को कच्चा माल उपलब्ध कराने में द्वितीयक रोजगार के अवसर सृजित हा सकते हैं। एक अनुमान के अनुसार इस प्रकार एक ब्लाक में 300 से 400 तक कुटीर उद्योग विकसित हो सकते हैं एवं सैकड़ों लोगों स्थाई और हजारों लोगों को मजदूरी मिल सकती है। इसे यदि मनरेगा योजना से जोड़ दिया जाय तो यह सोने में सुहागा का काम कर सकती है। ऐसे खेतों में सिर्फ फलदार को बेचकर ही आय हो बल्कि इसके साथ-साथ मिश्रित खेती हो सकती है। आवश्यक नहीं कि कोई फलदार पेड़ ही योजना बनाये बल्कि वह अपने खेतों पर जलवायु व परिस्थितियों के अनुसार अनेक प्रकार की सब्जियां, अनाज, दाले, तिलहन फसलें, मसालें, जड़ी-बूटियों, फूल, चारा-पत्ती सगन्ध पादप आदि का उत्पादन करने की योजना बना सकता है। इसी जमीन पर पशुपालन का कार्य भी सुविधाजनक तरीके से हो सकता है और आय कमाई जा सकती है।

**आखिर क्या बदलाव हो सकता है :**

भूमि सुधार कार्य तब तक यथार्थ रूप से उपयोगी नहीं हो सकता जब तक भूमि की चकबन्दी न की जाये अन्यथा उससे अपेक्षित लाभ कृषक को नहीं मिल सकता है। किसी भी प्रकार से व्यवसाय या उद्योग के लिए आधारभूत ढांचा होना आवश्यक है। इसके बिना वह व्यवसाय या उद्योग सही मायने में न तो स्थापित किया जा सकता है और न ही समुचित प्रगति कर सकता है, यह एक सामान्य बात है।

आजादी प्राप्त होने के बाद पहाड़ पर कृषि व्यवसाय व उससे संबंधित अन्य व्यवसायों के लिए कुछ भी नहीं किया गया या किया जा रहा है। इससे यहां के किसान अपेक्षित लाभ से वंचित है। आज पर्यावरण, पशुपालन, मत्स्य पालन, बागवानी, उद्यानीकरण, जड़ी बूटियों का उत्पादन आदि-आदि के अर्न्तगत सरकारी एवं स्वैच्छिक संस्थाओं के माध्यम से कई योजनाएं चल रही हैं। लेकिन परिणाम यह है कि इन योजनाओं का अधिकांश कृषकों के लिए कोई उपयोगिता सि( नहीं हो सकी।

पहाड़ पर खेतों का विखराव चरम पर सीमा पर है। एक-एक खेत के दसियों हिस्से घरेलू बंटवारे से हो रहे हैं। जिनमें आधुनिक तरीके से खेती करना दूर की बात है। इनमें परम्परागत खेती करने के भी लाले पड़ रहे हैं। हमारे नीति नियंता व उच्च पदों पर आसीन अधिकारियों का इस ओर कतई ध्यान न जाना दुर्भाग्यपूर्ण है। पहाड़ के कृषकों के लिए कुछ तो किया ही जाना चाहिए ताकि वह भी हिमाचल प्रदेश के कृषकों की भांति चकबन्दी का लाभ उठाकर अपनी दयनीय आर्थिक स्थिति से कुछ तो उभर सके। कुछ कर गुजरने की इच्छा शक्ति का अभाव इसमें सबसे बड़ा रोड़ा है।

यदि भूमि-सुधार व चकबन्दी कार्यक्रम एक अभियान के रूप में चलता है तो केवल मात्र 1 दशक से कम समय में राज्य में सकारात्मक परिणाम दिख सकते हैं।

इस कार्य से कृषक की जमीन बचेगी, बरसाती पानी के संरक्षण के उपाय जमीन पर उतरेंगे, जैविक उत्पादों के होने से मांग बढ़ेगी, पर्यावरण सुरक्षा होगी, ग्रामीण पर्यटन बढ़ेगा और सरकारी योजनाओं की सफलता की दर बढ़ेगी आदि-आदि। भूमि के बंजर होने की हालत में यहां के प्राकृतिक संसाधनों पर माफियाओं की नजर भी नहीं होगी। आज देखा जा रहा है कि पर्यटन के लिये बाहर के पूंजीपति यहां पर जमीन खरीदते चले जा रहे हैं और जमीन बेचने के बाद यहीं का निवासी बन्धक मजदूर के रूप में उनके उपक्रम में काम करने के लिये मजबूर हो रहा है। चकबन्दी होगी तो इस पर अंकुश लग सकता है।

## असीम संभावनायें

### पहाड़ी दालों के जरिये आय वृद्धि :

पर्वतीय क्षेत्र में व मैदान में उगने वाले अनाज, फल व सब्जियां में पौष्टिकता, स्वाद और अन्य तत्वों की मात्रा अलग-अलग होती है। इसका मुख्य कारण पहाड़ और मैदान में उत्पादन की परिस्थितियों का भिन्न होना। मैदानी क्षेत्र में जहां का गर्म वातावरण में रासायनिक खादों की मौजूदगी में फसल उगाई जाती है, वहीं पहाड़ में उगने वाले अनाज, फल व सब्जियां प्रदूषण रहित, शीतल जलवायु में न्यूनतम रासायनिक खादों व कीटनाशकों के स्थान पर गोबर व सड़ी गली पत्तियों आदि की जैविक खाद में प्राकृतिक रूप से उगाई जाती है। उत्तराखण्ड की इन्हीं विशिष्ट परिस्थितियों का लाभ दलहन उत्पादन में किया जा सकता है।

भारतीय भोजन में दाल का एक मुख्य अवयव है। संतुलित भोजन में दाल प्रोटीन के साथ-साथ विटामिन, लवण आदि की पूर्ति करती हैं। रोटी हो या चावल दाल के बिना भोजन अपूर्ण ही माना जाता रहा है। दालें सिर्फ प्रोटीन ही नहीं बल्कि अनेक ऐसे महत्वपूर्ण तत्वों की भी पूर्ति करती हैं, जो हमारे शरीर के लिये आवश्यक होते हैं। कुछ दालें लौह का एक अच्छा स्रोत मानी जाती हैं तो कुछ दालों में फॉस्फोरस अधिक मिलता है, इसके अलावा सबमें विटामिनो का स्तर अलग-अलग होता है। देश की अधिकांश आबादी के शाकाहारी होने के कारण से भारत में दालों का बहुत ज्यादा उपयोग होता है। उत्तराखण्ड में दलहन एक ऐसा क्षेत्र है जिसे यदि प्रोत्साहन दिया जाय तो इससे कृषक अच्छा लाभ कमा सकते हैं, लेकिन वास्तविकता में कभी यहां प्रचुरता में उपलब्ध होने वाली दालें आज धीरे-धीरे लुप्त होती जा रही हैं। पहाड़ की इन सुस्वादु दालों का स्थान आज मैदान में उगने वाली दालों ने ले लिया है जो कि पहाड़ की दालों की अपेक्षा स्वाद में उन्नीस ही ठहरती हैं। इसके अतिरिक्त अनेकों ऐसी दालें हैं जो यहां की विशेष भौगोलिक परिस्थितियों में ही उगती हैं अन्यत्र नहीं। राज्य में उगने वाली दालों को उपलब्धता के आधार पर दो भागों में बांटा जा सकता है, अपेक्षाकृत लोकप्रिय व उपलब्ध होने वाली दालें व दूसरी कम उगाये जाने वाली दालें। राजमा, उड़द सोयाबीन, गहथ, रयांस, तोर, अपेक्षाकृत अधिक उपलब्ध होती हैं जबकि यहां उगने वाली सुंटा, मसूर, चना, मटर बाजार में नजर नहीं आती है।

उत्तराखण्ड में सबसे ज्यादा उगायी जाने वाली दाल उड़द है। यह लगभग यहां के हर पर्वतीय जिले में उगती है। इस उड़द का स्वाद अपने आप में विशिष्ट होता है जिसको शीतकाल के समय अधिक प्रयोग में लाया जाता है। यह दाल महिलाओं में दूध बढ़ाने, रक्त में शर्करा की मात्रा कम करने तथा वीर्यवर्क मानी जाती है। इस दाल को पीस कर बना साग चैसा यहां बड़े चाव के साथ खाया

जाता है। शुभ कार्य में भी इसका प्रयोग किया जाता है। पहाड में उगी उड़द की पकोड़ियों व बड़ियों का कोई जबाब नहीं होता है जो अमृतसरी बड़ी से सुस्वादु होती है। लेकिन यह बहुत थोड़ी मात्रा में ही मिल पाती हैं।

यहां उगने वाली राजमा बहुत स्वादिष्ट होती है। खपत के मुकाबले इसका उत्पादन बहुत ही कम है। चमोली-जनपद में जोशीमठ के उर्गम, मलारी उत्तरकाशी में हर्सिल व मोरी क्षेत्र पिथौरागढ़ में धारचूला व मुन्सियारी, देहरादून में चकराता इसके सुप्रसिद्ध प्रक्षेत्र हैं। इस दाल की विशिष्टता व स्वाद को देखते हुये इसकी बिक्री वहीं पर हो जाती है। लेकिन कई व्यापारी मांग पर इसे अन्य नगरों में इसे बेचते हैं। दाल के खेतों से उतरने के बाद यह वहां 80 रू0 प्रति किग्रा0 में हाथों-हाथ बिक जाती है। वहीं यात्रामार्ग से गुजरने वाले तीर्थयात्री व पर्यटक जो इसके बारे में जानते हैं इसके लिये कोई भी भाव देने को तैयार रहते हैं। एक अनुमान के अनुसार इन क्षेत्रों में पहाड़ी राजमा का उत्पादन 500 से 800 कुन्तल तक होता है किन्तु बाहर के व्यापारियों द्वारा इसे वहीं पर खरीद के कारण यह कुछ दिन बाद बाजार में नजर नहीं आती है। एक बार इसका स्वाद चखने वाला इसका दीवाना ही हो जाता है, किन्तु एक पहलू यह है कि यहां के होटलों में बनायी जाने वाली राजमा की दाल मैदानी क्षेत्र की ही होती है क्योंकि वह सस्ती व उपलब्ध होती है। वर्तमान में इस दाल की अनेक किस्में हैं। इसका रंग देखकर इनके उगने के स्थान की पहचान की जा सकती है। बरसात से कुछ पूर्व बोया जाता है, जो नवम्बर में जाकर तैयार होती है। इसकी हरी मुलायम फलियां सब्जी के रूप में प्रयोग में आती हैं। अंग्रेजी भाषा में इसे 'विन्ग्रड बीन' तथा इसका वानस्पतिक नाम 'सोपाकरपस टेद्रागोनोकोलास' है।

दूसरी प्रमुख उगने वाली दाल सोयाबीन है, जो कि यहां की मूल न होने के बावजूद भी यहां पर प्रचुर मात्रा में उगाई जाती है। इसका दाल के स्थान पर कम ही उपयोग होता है। आज ज्यादातर अच्छी सोयाबीन तेल उत्पादन के लिये खरीद ली जाती है। पर्वतीय क्षेत्र में उगने वाली सोयाबीन का उपयोग आटे में मिलाने, भूनकर चबाने के रूप में अधिक होता है। इसे स्थानीय भाषा सफेद भट्ट भी कहते हैं। इसके सापेक्ष काला भट्ट यहां की मूल दाल है जो अब धीरे-धीरे लुप्त होती जा रही है। कुमाऊँ में इस दाल का प्रयोग चुरक्याणी बनाने में होता है जो अपने सुस्वादुपन के कारण घर-घर में बनाई जाती है।

उत्तराखण्ड की सबसे अनोखी व विशिष्ट दाल 'गहथ' है यह यहां के सभी पर्वतीय जनपदों में उगती है। बाजार में इस दाल की भी शीतकाल के दौरान बड़ी मांग रहती है, किन्तु इसके बावजूद यह प्रचुरता से उपलब्ध नहीं हो पाती है। एक मोटे अनुमान के अनुसार इस दाल का यहां पर उत्पादन 400 से 800 कुन्तल तक होता है। यह दाल यहां की पारम्परिक दाल है। पर्वतीय प्रवासी और वो लोग जो इस दाल के स्वाद से परिचित हैं ढूंढकर इसे खरीदते हैं। इस दाल की विशेषता इसका बिना देखरेख के भी कंकड़ युक्त भुरभुरी मिट्टी में उगना है। यह दाल अपने आपमें कड़ प्रकार के औषधीय गुणयुक्त है। इसके सेवन से सीमित आकार व भार की पथरी समाप्त हो जाती है। इस दाल के रस से शरीर में ताकत का अनुभव होता है। गठिया रोग के लिये भी इस दाल को ग्रामीण वैद्य सलाह देते हैं। इसके अलावा इसकी रोटी बेहद सुस्वादु होती है जो शीतकाल में शरीर को उष्णता प्रदान करती है। इसकी यहां पर कई किस्में उगाई जाती हैं। इनमें से कई दालें विलुप्त होने के कगार पर हैं जिनसे 6000 मी0 से अधिक ऊंचाई पर उगने वाली वाली गहथ अब कम ही दिखती है।

यहां की एक अन्य दाल है तोर। इसका नाम सुनकर, कईयों के मुंह में पानी आ जाना स्वाभाविक है। यह अरहर प्रजाति की एक स्वादिष्ट दाल है, जिसे साबुत दाने के रूप से बनाया जाता है। हर पर्वतीय जिले में उगने वाली है। शीतकाल के दौरान इसे विशेष प्रकार से बनाया जाता है। पर्वतीय क्षेत्र के लोग शीतकाल से पहले इसका संग्रहण कर रख लेते हैं और इन दिनों उनके द्वारा अरहर, मसूर आदि दालों का कम ही प्रयोग होता है। आमतौर पर बाजार में तोर का भाव 100 से 120 रू0 प्रति कि0 होता है।

पर्वतीय क्षेत्र में उगने वाली लोबिया की दाल को गढवाल क्षेत्र में सुन्टा कहा जाता है यह भी कमोबेश हर पर्वतीय जिले में उगती है। यह खरीफ व जायद के फसली समय में बोई जाती है। इसकी यहां पर तीन प्रजातियां उगाई जाती हैं। इसका दाल बनाने के अलावा परांटे बनाने में भी प्रयोग किया जाता है, जिनका अपना अलग ही स्वाद होता है। मसूर मैदानी क्षेत्र के अलावा पर्वतीय क्षेत्र में उगती है। यह एक सुपाच्य दाल है जो कि कफ व पित्त नाशक होती है। यह पेट में ऊष्माकारक प्रभाव पैदा करती है। पर्वतीय क्षेत्र में उगने वाली मसूर काले रंग की होती है। इसका जाड़ों में अधिक प्रयोग होता

है। वृ( व्यक्तियों की पाचन शक्ति के लिये यह अच्छी मानी जाती है। इसके अलावा यहाँ पर चने व मटर की दालें भी बहुत कम मात्रा में बोई जाती है। किन्तु यहां की चने व मटर की दाल मैदान के अपेक्षा वाली इन दालों कई गुना स्वादिष्ट होती है। यह आमतौर पर यहां पर बहुत ही कम बोई जाता है। इसलिये इसका उत्पादन नाम मात्र का होता है। मटर का ज्यादातर सब्जी में ही प्रयोग होता है। कुछ क्षेत्र विशेष में इसको दाल के रूप में उगाया जाता है।

रयांस, मूंग प्रजाति की दाल है जिसमें मूंग के गुणों के साथ अन्य गुण भी हैं। इसमें वसा की मात्रा अधिक होती है। इसलिये इसमें अन्य दालों को भी मिलाया जाता है। यह दाल अब यहां कम उत्पादित हो रही हैं। कहना न होगा कि यदि उत्तरांचल में दलहन के मौलिक बीजों में सुधार कर उन्हें अधिक उत्पादनशील बनाने के साथ-साथ नये कृषि तरीकों को भी अपनाया जाय तो उससे काफी अधिक मात्रा में यह दालें उगाई जा सकती है। आज गाँवों में ज्यादातर जमीन ऐसी है जो या तो पलायन या बंजर पड़ी होने के कारण अनुत्पादक है। इस जमीन की चकबन्दी हो सके तो यहां पर दालों का अच्छा उत्पादन हो सकता है।

आज बाजार में लोगों का रुझान रासायनिक खाद व बगर कीटनाशक के प्रयोग वाले खाद्यान्नों की ओर होता जा रहा है और इस राज्य में ज्यादातर उत्पाद जैविक ही उगाये जाते हैं। यदि इस दिशा में प्रयास हों तो रोजगार के नये अवसरों का सृजन हो सकता है। इन दालों के शु( वातावरण व रासायनिक खाद रहित खेतों में उगने के नाम पर इनको 'अलग ब्रान्ड' के नाम से बेचा जा सकता है। यदि आज देहरादून के नाम बासमती आराम से बिक जाती है तो यहां की दालें क्यों उत्पादन व लोकप्रियता में पीछे हैं जो सामान्य दालों के मुकाबले इक्कीस ही हैं उन्नीस नहीं।

### सगन्ध पादप खेती में संभावनायें :

उत्तराखण्ड क्षेत्र में जहां कई पौधों की व्यावसायिकता पर अनुसन्धान चल रहे हैं तो दूसरी ओर कई जड़ी-बूटियों पर अनुसंधानात्मक चरण पूरा करने के बाद उनका कृषिकरण आरम्भ हो सकता है। उत्तराखण्ड में ऐसे अनेक पौधे उगाये जा सकते हैं जिनसे कई प्रकार के सुगन्धित तेल पैदा किया जा सकता है।

विदेशी धरती पर इन पौधों की कृषि में लाभप्रदता हासिल है। ठीक ऐसा ही उत्तराखण्ड में भी हो सकता है। जहां पर ऐसे अनेक पौधे उगाये जा सकते हैं जिनको प्रायोगिक तौर उगाने में सफलता मिली है। लैवेन्डर, जिरेनियम, रोजमेरी, क्लेरीसेज, गार्डन सेज जैसे अनेक पौधे हैं। लेकिन प्रयोग से आगे व्यापारिक स्तर पर इनको उगाने में लोग आगे नहीं आने से यह क्षेत्र अभी तक पिछड़ा हुआ है। इस कारण से भारत विदेशों से इनके तेलों का आयात करता है। इन तेलों से कई प्रकार के उत्पाद बनाये जा सकते हैं। इन तेलों का उपयोग सौन्दर्य प्रसाधन सामग्री के निर्माण में होता है बल्कि इनसे शैम्पू, नहाने के साबुन, इत्र, अगरबत्ती, दन्त रसायन, दुर्गन्धनाशक रसायन के अलावा औषधियों के बनाने में होता है। इनमें कुछ का प्रयोग डिब्बा बन्द पदार्थों को रखने में व मसाले में किया जा सकता है। इन पादपों में रोजमेरी एक बेहद सफल पौधा है। इसके उत्पाद यहीं पर बनाये जा सकते हैं। जहां तक सगन्ध पादपों से तेल निकालने का सवाल है उनमें सबसे बड़ी समस्या यहां प्रयोग हो रहे ब्यायलरों के साथ है जिनमें ईंधन अधिक खर्च होता है। क्लेरीसेज, थाइम (वनजीरा) पपरमेन्ट, एस्पेराजस आदि ऐसे पौधे हैं जो सीढ़ीनुमा खेतों पर सफलता के साथ उगाये जा सकते हैं।

### ताम्र शिल्प में कारोबार :

गांव हैं शिल्प है और शिल्पी हैं। इनमें कुछ प्रकार का शिल्प कृषि से जुड़ा है तो कई दूसरे प्रकार के शिल्पों का प्रयोग यहां के समाज में होता है। उत्तराखण्ड में आज यदि कोई शिल्प बचा है तो वह ताम्र शिल्प है। इसमें हजारों लोगों को प्रत्यक्ष एवं परोक्ष काम मिला है। अल्मोड़ा जनपद में परम्परागत रूप से पाँच सौ परिवार इस शिल्प को जीवित रख कर परोक्ष, अपरोक्ष रूप से जीविका यापन कर रहे हैं। अनुमान है कि अकेले अल्मोड़ा जनपद से लगभग दो से तीन करोड़ रुपयों के तांबे के बर्तनों की बिक्री प्रतिवर्ष होती है। इसके अलावा बागेश्वर जनपद के अन्तर्गत मल्ली व तल्ली खरही के लगभग बीस गाँवों में कारीगर और पिथौरागढ़ जनपद के गगोलीहाट, थल बेरीनाग के भी अनेक परिवार पूरी तरह इस उद्यम से जुड़े हैं।

इस उद्योग से केवल पुरुष कारीगर ही जुड़े हैं और परिवार के सदस्य ही कार्य निबटाते हैं। कला और शिल्प के उद्योग के रूप में प्रयोग की परम्परा कुमाऊँ मण्डल को विरासत में प्राप्त हुई है। हस्तशिल्प ने कुमाऊँवासियों की अर्थव्यवस्था को दृढ़ आयाम प्रदान किये हैं। यहां की ऐपण कला अब बाजार का हिस्सा बनने लगी है जिससे उसकी मांग होने लगी है।

एक समय समूचे पर्वतीय क्षेत्र में ताम्र कारीगर धातु कला में सि(हस्त थे। ये कारीगर न केवल उत्कृष्ट ताम्र वस्तुएं बनाने में माहिर थे वरन वे धातु निष्कर्षण की तकनीक में भी प्रवीण थे। ताम्र कारीगर यद्यपि मुख्य रूप में चंद्र राजाओं के समय में पल्लवित होकर इस क्षेत्र में स्थापित हुए तो भी ताम्रकला के विकास की कहानी युगों पीछे तक जाती है। अल्मोड़ा, पिथौरागढ़ जनपदों में आज भी ताम्रयुगीन मानवाकृतियों के मिलने के समाचार आज भी सुनाई देते हैं। ताम्र कारीगर जिन्हें टम्टा कहा जाता है यह मानते हैं कि वे सोलहवीं शती में मुगलों के आक्रमण के बाद ही पर्वतीय क्षेत्र में आये थे। चंद्र राजाओं ने इन लोगों को अपने राज्य की राजधानियों के समीप बसाया। ये लोग राजा की टकसाल में सिक्के ढालने का कार्य भी करते थे। टम्टाओं को राजधानी के पास की जगह प्रदान की गयीं। खूँट, खर्क टम्टा, खरही आदि के अतिरिक्त अल्मोड़ा नगर के टम्टा मोहल्ले में भी ये लोग बस गये थे। बाद में इन शिल्पियों के परिवारों का विस्तार हुआ और फैलाव के कारण अन्य जनपदों में भी ताम्रशिल्प का कार्य होने लगा। जहां यह लोग बसे वहां इन लोगों को तांबे की खाने भी मिली। टम्टा लोगों के साथ खानों से धातु निष्कर्षण के लिए आगरी जाति के लोग भी आये थे। खरही में जनोटी व पालड़ी गाँव के पास आगर नामक गाँव में आज भी आगरी लोग रहते हैं।

गोरखा काल के समय टम्टा लोग सिक्के ढालने का ही कार्य करते थे लेकिन अंग्रेजों द्वारा कुमाऊँ पर अधिकार कर लेने के पश्चात् स्थानीय तांबे का खनन बन्द हो गया। बाद में इन लोगों से टकसाल का काम भी छीन लिया गया। तब गौलापलड़ी, गिवाड़ के कोट्यूड़ा आदि गाँव में तांबे की खाने थीं, इसलिये टम्टाओं को गंगाघाटी की ताम्र संचय संस्कृति के रचियताओं के वंशज भी बताया जाता है।

अंग्रेजों द्वारा तांबे की खानों पर प्रतिबन्ध लगा दिये जाने से एक लोग अपनी रोटी रोजी को सुरक्षित करने के लिए बाजारों और घरों के पुराने तांबे को गलाकर माल तैयार करने लगे। इस प्रकार से तैयार माल न तो खपत की दृष्टि से पर्याप्त पड़ता होता और न ही इससे गुजर-बसर के लायक कच्चा माल ही उपलब्ध हो पाता था इसलिए कालान्तर में ताम्र शिल्प के विकास पर विपरीत प्रभाव पड़ा।

आज भी टम्टा लोग अपने पुरानी कला से जुड़े हैं जो कच्चे माल के रूप में तांबे की चादर और चक्के का प्रयोग करते हैं। औजारों के रूप में पत्थर के सांचे, विभाजक यंत्र, कत्ती, छेनी, खराद, पंच, आफर, संडासी, घन प्रमुख हैं। बर्तन को आधार देने के लिए निहाई का प्रयोग होता है। चक्के से गागर बनाने की प्रक्रिया विशिष्ट है। चक्के को गर्म कर घन से तब तक पीटा जाता है जब तक कि वह एक सार पतली चादर जैसा न हो जाये तब उसे गागर जैसा रूप दे दिया जाता है। इसकी तली में जोड़ नहीं लगाया जाता।

बर्तन बनाने के लिए निहाई पर रख कर अलग-अलग ताँबे की चादर के टुकड़ों को छेनी व हथौड़े की सहायता से मनोकूल आकार दे दिया जाता है। तत्पश्चात् इन्हें टाँके की सहायता से जोड़ लिया जाता है। पॉलिश के लिए केवल कपड़े की सहायता से रगड़ाई की जाती है। ताम्र कारीगर न केवल गागर जैसी वस्तुएँ तो बनाते ही हैं वरन् सामाजिक, धार्मिक जीवन में काम आने वाली लगभग हर वस्तु का वे व्यावसायिक स्तर पर उत्पादन करते हैं। धार्मिक कार्यों में प्रयोग करने के लिए दीप, पंचपात्र, अर्घ्य, आचमन, वाद्ययन्त्रों में ढोल, नगाड़े, दमुए, तुरही, नागफेनी, रणसिंहा और भूकर, दैनिक प्रयोग की वस्तुओं में गागर, परात, तौले, फौले आदि का यहां पर बड़े स्तर पर उत्पादन होता है। इसके अलावा अब कुछ लोग तांबे के लैम्पशेड, वाटर फिल्टर, दूसरे शोपीस, वालहैगिंग आदि भी बनाने लगे हैं जिनमें पर्यटक दिलचस्पी दिखाते हैं।

ताम्रकला उद्योग में पारम्परिक रूप से उत्पादित वस्तुओं के विपणन की समस्या नहीं है। नकद बिक्री के अलावा पुराने बर्तनों से भी क्रय-विक्रय होता है। गागर, तौले, कलश, परात, लोटा, नरसिंहा, तुरही आदि का विपणन उत्तराखण्ड एवं नेपाल में होता रहा है। चूंकि ये पात्र लोगों के सामाजिक, धार्मिक जीवन से जुड़े हुए हैं। इसलिये इनके विक्रय की कोई समस्या नहीं है। यह विश्वास है कि तांबे के बर्तन के रखा पानी पेट की बीमारियों के लिए लाभप्रद होता है इसलिये भी तांबे के बर्तनों का प्रचलन कुछ ज्यादा है। कई लोग तांबे के प्रयोग को समृद्धि का प्रतीक भी मानते हैं। शादी-ब्याह में तांबे के बर्तन देने का प्रचलन काफी पुराना है। पुराने समय से ही पहाड़ के मेले, व्यापारिक गतिविधियों का भी केन्द्र रहे हैं। इसलिए नंदादेवी, उत्तरायणी, थल, जौलजीवी, गौचर, पूर्णागिरी आदि में तांबे के बर्तनों का बाजार आज भी देखने को मिलता है, जिसमें लोग जरूरत की चीजों की खरीद-फरोख्त करते हैं। तांबे से बना फिल्टर अब घर-घर की जरूरत हो गया है। शासन स्तर पर भी इसके विपणन के लिए अपने शोरूम खोले गये हैं। लेकिन इस सबके बावजूद ताम्र कारीगर बहुत खुशहाली का जीवन नहीं जी पा रहे हैं। आर्थिक रूप से समृद्धि न होने के कारण उनको कच्चे माल के लिए व्यापारियों पर आश्रित

रहना पड़ता है। छोटे-छोटे घरों में कारीगरों के निवास के कारण उनके सामने सुविधा सम्पन्न कार्यशाला आज भी एक स्वप्न है। हालांकि यह उद्यम कम संभावनामय नहीं है।

### नये विदेशी फलों की संभावनायें :

उत्तराखण्ड में पारम्परिक फलों के उत्पादन के अलावा अन्य कई फलों ने उत्पादन की असीम सम्भावनायें हैं। लगभग 100 साल पूर्व हिमाचल की धरती पर विदेशों से लाया गया सेब वहां की अर्थव्यवस्था का एक अंग बन गया है। इसी प्रकार उन्नीसवीं शताब्दी के मध्य भारत में चीन से लाई गई चाय ने भारत को चाय का अग्रणी निर्यातक देश बना दिया है, किन्तु अभी भी कई ऐसे फल-फूल हैं जो अन्य देशों में उगते आये हैं। उत्तराखण्ड की धरती पर भी उनका सफल परीक्षण हो चुका है किन्तु उत्पादन की दिशा में अभी बात आगे बढ़ना बाकी है। कीवी, नैक्टरीन, पेसिओन, पीकननट, स्ट्राबेरी ऐसे कुछ फल हैं जो हिमाचल प्रदेश में सफलतापूर्वक उगाये जा रहे हैं और उत्तराखण्ड में भी इनके प्रयोग सफल रहे हैं। इसलिये यह भी बेहद संभावनापूर्ण हैं।

### कीवी :

कीवी यद्यपि न्यूजीलैण्ड का फल है लेकिन इसका मूल स्थान चीन है। वहां से यह पौधा जापान, रूस, अमेरिका व न्यूजीलैण्ड, फ्रांस, जर्मनी पहुंचा जहां आज इसका व्यावसायिक उत्पादन हो रहा है। न्यूजीलैण्ड में इस फल की सर्वाधिक बागवानी होती है। कीवी को चायनीज गूजबेरी के नाम से भी जाना जाता है जो चीकू से मिलता जुलता गहरे भूरे रंग का पौधा होता है और चीकू से मिलता-जुलता है। चीकू जहां गोल आकार में होता है वहीं यह थोड़ा लम्बा होता है किन्तु इसका स्वाद एकदम भिन्न होता है। इसमें विटामिन 'सी' सबसे अधिक होता है। इसके अलावा विटामिन 'ए', 'बी' की भी इसमें अच्छी मात्रा होती है।

भूमि और जलवायु की दृष्टि से इसकी उत्तराखण्ड की पहाड़ियां इसके लिये बेहद अनुकूल हैं। चूंकि यह फल देर तक सुरक्षित रहता है इस कारण व्यापारिक स्तर पर इसे ही उगाने पर जोर दिया जाता है। जहां तक रोपण का सवाल है वह बीज विधि से किया जाता है। लेकिन बीज से उगे पौधे को मूल रूप में उगा कर उस चश्मा या फलक चढ़ाकर पौधे तैयार पौधे अच्छी गुणवत्ता लिये होते हैं। सितम्बर में टी विधि से व जनवरी में टंग ग्राफिटिंग द्वारा पौधों को तैयार किया जाता है। रोपाई का उपयुक्त समय जनवरी से मार्च प्रथम सप्ताह होता है। बेलनुमा होने के कारण इसमें पौधों को अपेक्षाकृत मजबूत सहारे की आवश्यकता होती है। लोहे के डंडों ने तारों को बांध उसे छत का सा रूप दिया जाता है। चूंकि यह पौधा बेलदार होता है इसलिये जड़ों को फैलने के लिये भूमि उपजाऊ व दोमट होनी चाहिये। इसमें मिट्टी का पी.एच. के मान का खास ध्यान रखना होता है जो 5.5 से 6.5 के मध्य होना चाहिये अन्यथा पौधे की वृद्धि व उपज व बुरा प्रभाव पड़ता है। अंगूर की बेल की तरह यह पौधा सर्दियों में अपने पत्ते छोड़ने के बाद बसन्त में फूल देता है। फल अच्छा आये इसके लिये 200 से 800 घंटे चिलिगद्ध शीतल तापक्रम की आवश्यकता पड़ती है, जो सेब के मुकाबले काफी कम है। आमतौर पर यह तापमान उत्तराखण्ड की निचली पहाड़ियों के उपयुक्त है। अधिक गर्मी को यह पौधा सहन नहीं कर पाता है। इसी प्रकार तेज हवा से इसकी बेल को नुकसान होता है। हिमाचल प्रदेश में इसकी अनेक किस्मों उगाई जा रही हैं जिनमें एबट, एलिसन, ब्रूनो, हैवर्ड आदि प्रमुख हैं।

इनका आकार व स्वाद किस्मों के अनुसार भिन्न-भिन्न होता है। ब्रूनो सबसे ज्यादा उपज वाली किस्म है। पौधे की काट-छांट करनी होती है। अनावश्यक रूप से उलझाव वाली टहनियों को पौधे से हटा देने पौधों के विकास अच्छा होता है। यदि भूमि व खाद उपयुक्त है तो एक साल में यह बेल 5 मीटर तक बढ़ जाती है। इस फल के लिये सिंचाई का विशेष ध्यान रखना होता है। वहां सिंचाई के लिये जल संरक्षण की विधियों के द्वारा संरक्षित वर्षा जल का उपयोग ही विकल्प है। ड्रिप सिंचाई इस फल के लिये एक उपयुक्त सिंचाई विधि है। दो वर्षों तक तक जब तक कि इसकी जड़ें लम्बी न हो इस पौधे पर अधिक ध्यान देना होता है।

इसकी बेल को फल देने में पहले पांच साल तक लगते हैं। फल अक्टूबर से दिसम्बर के मध्य तक पकते हैं। आमतौर पर 30-40 दिनों तक यह फल खराब नहीं होता है। चाहें तो प्रशीतन गृह में भी इसे 4 से 5 माह तक की अवधि तक सुरक्षित रखा जा सकता है। इस फल पर आमतौर पर कोई बड़ी बीमारी नहीं लगती है। यदि पौध स्वस्थ है तो एक बार में इसकी आसतन उपज 35-75 किग्रा0 के मध्य होती है। वर्तमान में इस कीवी फल की खपत महानगरों में होती है और वहां भी एक खास वर्ग तक ही सीमित है। इसकी दर फल भी उपलब्धता पर निर्भर करती है, यह जहां 200 से 300 रु0 प्रति किलो में पड़ता है। वहीं काश्तकार से 100 से 150 रु0 प्रति किग्रा0 मिल जाते हैं जो कि उसे अच्छा

लाभ प्रदान कर सकता है। उत्तराखण्ड के ग्रामीण क्षेत्रों इसका उत्पादन निसन्देह लाभकारी हो सकता है।

### स्ट्राबेरी :

स्ट्राबेरी एक अनोखा नाजुक फल है। भारत में इसकी यूरोपीय व भारतीय किस्में दोनों ही उगाई जा रही हैं। इसका उत्पादन मौसम के मिज़ाज़ पर भी काफी कुछ निर्भर करता है। भारत में आज इसका उत्पादन जम्मू एवं कश्मीर, हिमाचल तथा उत्तराखण्ड में विकासनगर एवं कुमाऊँ पहाड़ियों में किया जा रहा है। स्ट्राबेरी की खासियत यह है कि बहुत ही जल्दी उगती है। स्ट्राबेरी की विभिन्न भू-भागों के लिए अलग-अलग किस्में होती हैं। अधिक ऊँचाई वाले इलाकों के लिए यदि गार्डन स्ट्राबेरी उपयुक्त है तो तराई वाले क्षेत्रों में इसकी किस्म इन्डियन स्ट्राबेरी लगाई जाती है जो कि पंजाब, आसाम, नीलगिरी की पहाड़ियों में होती है।

स्ट्राबेरी के पके फल सुर्ख लाल रंग के होते हैं और आकार में छोटे गोल व स्वाद में मीठे होते हैं एवं इनको पेट भरने की बजाय स्वाद के लिए प्रयोग किया जाता है। पर्वतीय क्षेत्र में इसे मार्च-अप्रैल माह में लगाया जाता है तो मैदानी क्षेत्र के लिए जनवरी-फरवरी का मौसम उपयुक्त रहता है। आरम्भ में इसक पौधे को निगरानी की अधिक आवश्यकता पड़ती है। फल के जल्दी खराब होने की संभावना को देखते हुये इसे ऐसी जगहों पर उगाया जाता है जहाँ से इसको तत्काल बाजार में भेजा जा सके या फिर उसे डिब्बा बंद किया जा सके। यह एक ऐसी नकदी फसल है जो कास्तकार को अच्छा लाभ प्रदान करती है किन्तु इसके उगाने से पूर्व इसके विपणन के बारे में निश्चित करना होता है।

आज स्ट्राबेरी की जो किस्में उग रही हैं उनमें चेन्दलर, टिओगा, टोरी आदि प्रमुख हैं। इसे उगाने के लिए भूमि का पी.एच. मान 5.5 से 6.5 होना चाहिए तथा मिट्टी ऐसी हानी चाहिए जहाँ पानी रुकता न हो। इसके लिए वर्षाकाल के खत्म होने से पूर्व अच्छी प्रकार से खेत में पोटाश, फास्फोरस व नत्रजन डालकर तैयार करा लिया जाता है। पौधों को इस प्रकार रोपित किया जाता है कि वे एक दूसरे से एक व दो फिट की दूरी पर हों।

फल लगने से पूर्व स्ट्राबेरी के पौधे जमीन पर गिरने से शीघ्र खराब होने लगते हैं। इसलिए जब अप्रैल माह में इसके फल पकने को होते हैं तो उसके नीचे घास का बिछौना तैयार किया जाता है। इसके लिए चीड़ की पत्तियों के अलावा अनाज की भूसी आदि का प्रयोग होता है। इन्हें बिछाने से पूर्व जमीन पर कीटाणुनाशकों का छिड़काव किया जाता है ताकि कीड़ों के प्रकोप से उस पर असर न हो। गर्मी में इन्हें प्रति दिन तोड़ा जाता है। स्ट्राबेरी का प्रयोग स्वीट डिश की सजावट करने, आइसक्रीम में व्यापक रूप से होता है। कम उत्पादन और अधिक मांग के कारण यह फल अधिक महंगा बिकता है। उत्तराखण्ड के देहरादून एवं नैनीताल जनपद में इसे सीमित मात्रा में उगाया जाता है। इसके बारे में लोगों में बहुत ही कम जागरूकता है। इसे भी छोटी काश्त के रूप में राज्य के अन्य जनपदों में भी उगाया जा सकता है इससे यहां के कृषकों भी अपनी आय में इजाफा हो सकता है।

### पीकन नट :

गिरीदार फलों का अपना महत्व होता है। यह फल पौष्टिकता और स्वाद में आम फलों से भिन्न होते हैं। इनमें काजू, बादाम, अखरोट, चिरोंजी, पिस्ता से हम सब चरिचित ही हैं। लेकिन नये गिरीदार फलों में फलों में पीकन नट एक ऐसा गिरीदार फल है जिसे राज्य में सफलता पूर्वक उगाया जा सकता है। यह अखरोट की तरह का फल है जो अखरोट से कहीं अधिक सुस्वादु व पौष्टिक होता है। इसका छिलका अखरोट के मुकाबले पतला होता है इसलिये इसे तोड़ने में अधिक मशक्कत नहीं करनी होती है।

अमेरिका में पीकन नट की खेती व्यावसायिक स्तर पर होती आई है, वहीं भारत में इसका उत्पादन अभी छोटे स्तर पर आरम्भ हुआ है। इनमें हिमाचल प्रदेश व कश्मीर के कुछ स्थानों पर इसका प्रयोग बेहद सफल रहा है। पीकन नट की बागवानी आमतौर पर समुद्र तल से 600 से 1500 मी० की ऊँचाई वाले स्थानों पर की जा सकती है। इस पर गर्मी का कोई बहुत ज्यादा असर नहीं होता है। 25 डिग्री सेग्रे० से 35 डिग्री सेग्रे० तापक्रम को यह आसानी से झेल लेता है। आमतौर पर अखरोट जहां पर्वतीय हिस्से में ही उगता है वहां पीकन नट को तराई में भी उगाया जा सकता है जहां कि गर्मी के दौरान तापक्रम 40 डिग्री सेग्रे० तक जाता है। इसका रोपण वर्षाकाल में किया जाता है। पीकन नट की विभिन्न किस्मों लिये 700 से 1500 घंटे तक 7 डिग्री सेग्रे० तक वाले तापमान की जरूरत होती है और दिसम्बर व जनवरी में उत्तराखण्ड में यह तापक्रम आम तौर पर रहता है।

इसके पौधों को बीज बोककर उगाया जा सकता है जब कि कलम विधि से रोपण से इसके पौधे में 5 से 7 वर्ष में ही फल आने लगते हैं। आमतौर पर इनकी रोपाई का समय जनवरी-फरवरी है। पॉलीथीन के थैलों में तैयार पौधों को बरसात के समय रोपित किया जाता है। चूंकि इसका पेड़ बड़ा होता है, इस

कारण उनके बीच में पर्याप्त दूरी का होना जरूरी होता है। इसका पेड़ देर से फल देता है इस कारण इसके बगीचे के मध्य आड़ू, प्लम, खुमानी, कीनू, माल्टा इत्यादि पौधे भी बीच में लगाये जा सकते हैं जो जल्दी फल देना आरम्भ कर देते हैं।

पौधे की अच्छी बढ़ोत्तरी एवं अच्छे फल के लिये आवश्यक है कि उसे खाद एवं अन्य पोषक तत्व भी मिलते रहें। खाद एवं उर्वरक का प्रयोग पौधे की आयु के हिसाब से होता है। इस पौधे को अन्य की अपेक्षा अधिक पानी की आवश्यकता होती है जिससे इसके फल का आकार तथा उसमें तेल की मात्रा में बढ़ोत्तरी होती है। अत्यधिक सूखे के कारण इसके फल समय पूर्व झड़ने लगते हैं।

जब इसके फल पेड़ पर ही फटने लगें उसी समय इसके फलों की तुड़ाई की जाती है। इसके फल तोड़ने के बाद इसके छिलकों को निकालकर एक सप्ताह तक सुखाया जाता है, ताकि फल में नमी न रहे अन्यथा फल के स्वाद, उसके सड़ने की संभावना बनी रहती है एवं स्वाद की गुणवत्ता पर असर पड़ता है जो कड़वा हो सकता है। सूखने के बाद इन्हें शुष्क वातावरण में रखा जाता है। इसके बाद इन्हें बाजार में बिक्री हेतु लाया जाता है जिनकी अच्छी कीमत बाजार में मिल जाती है। अभी तक इसका बहुत बड़े स्तर पर उत्पादन आरम्भ नहीं हुआ है। नये राज्य उत्तराखण्ड में पीकननट को व्यावसायिक तौर पर उगाये जाने में लाभ की संभावनाये हैं।

### **नैक्टरीन :**

दूसरा फल जो राज्य में सफलता के साथ उगाया जा सकता है इनमें नैक्टरीन भी है। आड़ू प्रजाति का यह फल आड़ू की बजाय प्लम के जैसा ही होता है लेकिन इसका स्वाद में भी आड़ू व प्लम जैसा ही होता है व स्वादिष्ट होता है। इसका बीज आड़ू के बीज से मिलता है। वैसे तो आड़ू के फल की बाहरी सतह यद्यपि रोएँदार होती है वहीं नैक्टरीन फल की सतह एकदम चिकनी होती है। इसे बीज विधि से लगाया जा सकता है किन्तु इसकी अच्छी किस्म के लिये सामान्य आड़ू के पौधे पर कलम विधि सबसे उपयुक्त होती है। हिमाचल की सीमा से लगे स्थानों पर इसे आजकल उगाया जा रहा है। इसकी कीमत तो अधिक नहीं है किन्तु आड़ू से बेहतर होने के कारण इसकी बिक्री में दिक्कत नहीं पाती है।

### **पैसीमोन :**

पैसीमोन भी एक ऐसा फल है जो सफलता के साथ यहां पर उगाया जा सकता है लगभग टमाटर जैसा यह फल एक गूदेदार फल है। इसका प्रयोग जूस बनाने में किया जाता है।

### **विदेशी सब्जियों में रोजगार :**

उत्तराखण्ड में पारम्परिक सब्जियों में पालक, फूलगोभी, बन्दगोभी, लौकी, बैंगन, गाजर, शिमला मिर्च, मूली, प्याज, टमाटर इत्यादि के अतिरिक्त कुछ सब्जियां ऐसी भी हैं जो हमारे देश में बहुत ही कम उगायी जा रही हैं। इन सब्जियों को विदेशी सब्जियों की संज्ञा दी जाती है।

सामान्यतः यह सभी सब्जियां शीतोष्ण जलवायु में उगायी जाने वाली हैं। विभिन्न कारणों से यह सब्जियां हमारे देश में व्यावसायिक रूप नहीं ले पायी हैं जिसके पीछे मुख्य कारण कृषकों का इन सब्जियों से परिचित न होना, इनके बारे में जानकारी की कमी, बीजों की अनुपलब्धता, सीमित क्षेत्र में ही उपयुक्त वातावरण होना व शोध कार्यों की कमी का होना है। इन सब्जियों की महत्ता को देखते हुए लगभग यहां पर अनेक प्रकार सब्जियों के बीजों को विदेशों से संकलित कर उगाया गया।

इनमें कुछ सब्जियां जुलाई से सितम्बर तथा कुछ मार्च-अप्रैल में बोई जाते हैं जबकि बीजोत्पादन हेतु बोने का समय अगस्त-सितम्बर उचित माना गया है। सामान्यतः इन सब्जियों को कृषि तकनीक पारम्परिक सब्जियों की कृषि तकनीक से मिलती जुलती है। इनकी खेती रोपण तथा सीधी बुवाई दोनों विधियों से की जा सकती है। सामान्यतः 30-90 दिनों के अन्तर्गत रोपण हेतु पौधे तैयार हो जाते हैं। रोपण हेतु पौधों को इन सब्जियों को कृषि तकनीक के अनुसार खेतों में रोपित कर दिया जाता है। रोपण से पहले खेत को गोबर की खाद उचित व रासायनिक खाद इत्यादि को उचित मात्रा में मिलाकर तैयार किया जाता है। इसके बाद समय-समय पर कृषण क्रियाएं भी करते रहते हैं। इस प्रकार बोने के लगभग 90-120 दिनों के बीच हरी सब्जियां प्राप्त होने लगती हैं।

बीजोत्पादन हेतु पौधों का रोपण सितम्बर-अक्टूबर में किया जाता है। इन सब्जियां शीतोष्ण जलवायु की होने से इन पर पाले इत्यादि का कम प्रभाव रहता है। लगभग 120-260 दिनों के बीच में उपयुक्त सब्जियों के बीज प्राप्त हो जाते हैं। फूलों के विकास से पहले इन सब्जियों के पौधों को चिलिंग तापक्रम की आवश्यकता होती है। इसकी चिलिंग आवश्यकता पूर्ण होने के बाद फूलों का विकास भली भांति हाता है और इसके बाद निषेचन के लिए उपयुक्त तापक्रम 18-22 डिग्री सेंटीग्रेड भी प्राप्त हो जाता है। इस प्रकार बीजों का उत्पादन सम्भव हो जाता है। यह दशायें मैदानी क्षेत्रों में उपलब्ध नहीं हो पाती है। कुछ सब्जियों को कम चिलिंग की आवश्यकता होती है उनको मैदानी क्षेत्रों में जाड़ों में उगाया जाता है इनका परन्तु बीजोत्पादन पर्वतीय क्षेत्रों में ही सम्भव है।

यह सब्जियां स्वादिष्ट होने के अतिरिक्त पोषक तत्वों से भरपूर हैं। रासायनिक तत्वों का विश्लेषण करने पर पाया जाता कि इन सब्जियों में विटामिन्स, खनिज, वसा, प्रोटीन, शर्करा, व रेशे प्रचुर मात्रा में पाये जाते हैं। ये सभी तत्व मानव शरीर के विकास तथा रख रखाव हेतु आवश्यक होते हैं।

इन सब्जियों की खेती हरी सब्जी तथा बीजोत्पादन दोनों रूप में सफलता पूर्वक की जा सकती है। उत्तराखण्ड के कृषक यहां की शीतोष्ण जलवायु का लाभ उठाकर इन सब्जियों की खेती हरी सब्जी व बीजोत्पादन दोनों रूपों में करके अपना आर्थिक सुधार कर सकते हैं। यह सब्जियां स्वादिष्ट व मंहंगी होने के कारण अभी महानगरों के पांच सितारा होटलों में ही अधि खपती है। मल्टीनेशनल कम्पनियों व विदेशी पर्यटकों के बढ़ते भारत आगमन को देखते हुये इन सब्जियों की मांग और अधिक बढ़ गयी है। राज्य की जलवायु का उपयोग करते हुये यहां के कृषक यूरोपियन सब्जियों का उत्पादन करके स्वयं तथा प्रदेश के विकास में अग्रणी हिस्सेदारी प्रस्तुत कर सकते हैं। यह सब्जियां "लो वोल्यूम हाई वैल्यू" फसले भी कहलाती हैं। जिनको यदि यहां का किसान अपनाये तो अच्छा लाभ अर्जित हो सकता है क्योंकि इन सब्जियों की थोड़ी मात्रा से अधिक धन अर्जित कर सकते हैं।

उत्तराखण्ड के पर्वतीय क्षेत्रों में ऐसी सब्जियों की खेती को बढ़ावा देकर ही यहां के कृषकों का अधिक विकास किया जा सकता है। इनमें से किसी की कलियां किसी की पत्तियां, फल व डंटल, जड़ तना उपयोग में आता है। इनमें ग्लॉब आर्टिचोक, रूटाबागा, कार्डून, स्विस्चार्ड, रूबार्ब चार्ड, एस्पारेगस, स्कोरजेनेरा, लोक, मेलो, ब्रोकली, केल, रेड केवेज, सेल्टयूस, चायनीज कैबेज, साल्सीफाई, ब्रुसेल्स स्प्राउटस, कोरियन स्पीनेज, सेलेरियाक, लेटयूस, एन्डिव, पासली, स्वीट फेनल, ब्लैक फेनल, न्यूजीलैण्ड स्पीनेज को लेकर किये गये प्रयोग सफल रहे। यदि राज्य कोई किसान इनकी खेती करता है और विपणन की व्यवस्था पहले हो जाती है तो यह लाभदायक सौदा हो सकता है।

### फूलों की खेती :

आधुनिक समाज में पुष्पों के प्रति बदलते नजरिये कारण इनकी मांग बढ़ती जा रही है और यही कारण है कि आज इसे एक आर्थिक स्रोत के रूप में भी देखा जाने लगा है और फूलों का शुमार आज विलासिता की वस्तु के रूप में होने लगा है। इसके अनेक उपयोगों के कारण राष्ट्रीय व अन्तर्राष्ट्रीय बाजार में फूलों की मांग धीरे-धीरे बढ़ रही है। फूलों की खेती ने कई देशों की अर्थव्यवस्था को भी नई रंगत प्रदान की है। भारत में भी पिछले एक दशक के दौरान फूलों की खेती का रुझान बराबर बढ़ा है। आज भारत में फूलों का कारोबार 1 हजार करोड़ रुपये के आसपास पहुँच चुका है। भारत में मुम्बई, दिल्ली, मद्रास, पुणे, बंगलौर व कलकत्ता फूलों के कारोबार के प्रमुख केन्द्र बन चुके हैं। उत्तराखण्ड में पहले फूलों की जरूरत बहुत ही कम होती थी लेकिन आज इनकी मांग बढ़ गई है। पुष्पों का उपयोग देव पूजा, अतिथि सत्कार, स्वागत, विवाह एवं श्र(िजलि अर्पित करने के साथ सौन्दर्य एवं सजावट में अभिवृि करने में किया जाता है।

उत्तराखण्ड में पुष्पोत्पादन की व्यापक संभावनायें हैं किन्तु अभी तक इस क्षेत्र में कोई ध्यान नहीं दिया गया है। पर्वतीय भूभाग में अधिकांश भूमि असिंचित है, जिसमें कठिन परिश्रम करके भी पूरे वर्ष के तक के लिये अनाज उत्पन्न नहीं किया जा सकता ऐसे में बेमौसमी सब्जियों, फल एवं पुष्प उत्पादन एक प्रमुख विकल्प बन सकता है। हिमाचल प्रदेश का उदाहरण है कि कैसे इस छोटे से प्रदेश के कास्तकारों ने समय की नब्ज को पकड़ा और आज आत्मनिर्भर हैं।

उत्तराखण्ड में जलवायु ठण्डी होने के कारण यदि इस फूलो को वैज्ञानिक विधि से अपनाया जाय तो फूलों के उत्पादन के क्षेत्र में कदम बढ़ाना लाभ का सौदा बन सकता है। यहां की जलवायु कट-फलावर की खेती के लिये विशेष रूप से लाभदायक है, क्योंकि मुख्य रूप से इन फूलों की खेती के लिये 15° सेग्रे0 से 25° सेग्रे0 के औसत तापमान चाहिये होता है। उत्तराखण्ड के निचले क्षेत्रों में सर्दियों में यह तापमान सर्दी में तो मध्यम ऊंचाई वाले क्षेत्रों में यह तापमान गर्मी में उपलब्ध रहता है। कट-फलावर के अतिरिक्त यहाँ स्वदेशी तथा कुदरती सजावटी सदाबहार पौधों की खेती हो सकती है। यहां पर ऐसे फूलों की पैदावार को व्यवस्थित किया जा सकता है जो कि पड़ोसी एवं दूर की मण्डियों में बेमौसमी हों।

जिस अनुपात में राष्ट्रीय तथा अन्तर्राष्ट्रीय बाजार में पुष्पों की मांग है, उसकी पूर्ति अभी तक हमारा देश पूरा नहीं कर पा रहा है। इसकी पूर्ति हम तभी कर सकते हैं जब हम बहुत अधिक क्षेत्र में कार्य करें। लेकिन पुष्प उत्पादन के क्षेत्र में कम तकनीकी जानकारी, विपणन तथा कमजोर अवस्थापना के कारण देश में इस क्षेत्र में अच्छी प्रगति नहीं हो पा रही है। विश्व में पुष्प उत्पादन के क्षेत्र में असीम सम्भावनाओं को देखकर अब धीरे-धीरे पुष्प उत्पादन में भी बदलाव देखा जा रहा है। धीरे-धीरे पुष्प उत्पादन पारम्परिक ठण्डे क्षेत्रों से गर्म क्षेत्रों में स्थानान्तरित हो रहा है क्योंकि यूरोप के अधिकतर देश सर्दियों के मौसम में बर्फ से ढके रहते हैं जिसमें फूलों की खेती करना असम्भव कार्य है। इन गर्म देशों में उस समय पर मौसम सुहावना होता है साथ ही कम दरों पर मानव शक्ति की उपलब्धता तथा दक्ष परिवहन साधन भी इस दशा में लाभकारी सि( हुए हैं। वर्तमान समय में फूलों की सर्वाधिक खपत इस समय यूरोप एवं अमेरिका जैसे देशों में है।

वर्तमान समय में उत्तराखण्ड में भी फूलों की खेती रोजगार का अच्छा विकल्प सिद्ध हो सकती है। भौगोलिक परिस्थितियों के अनुरूप कट-फलावर एवं लूज-फलावर का काफी उत्पादन किया जा सकता है। वैसे तो भारत वर्ष में बंगलौर एवं पुणे की तरह जलवायु वाले कई क्षेत्र हैं, जहां फूलों की खेती वर्ष भर की जा सकती है परन्तु वर्ष में एक समय ऐसा होता है जब पुष्प की विशेष गुणवत्ता वाले पुष्प प्राप्त नहीं किये जा सकते हैं ऐसे समय में उत्तराखण्ड क्षेत्र में पुष्पोत्पादन किया जा सकता है व उस दौरान बाजार में फूलों की कमी को पूरा किया जा सकता है। इस हेतु हमें पुष्प उत्पादन के लिये एक ऐसी नीति बनानी होगी ताकि वर्ष भर फूलों की मण्डी में पुष्पों की भरमार रहे। इसके लिये आवश्यक है कि फूलों की खेती करने में हम इस बात का ध्यान रखें कि कौन से पुष्प इस समय और किन क्षेत्रों में नहीं होते हैं। इससे व्यर्थ की प्रतिस्पर्धा की संभावना नहीं रहेगी तथा कास्तकारों को उनके उत्पाद का उचित मूल्य भी मिल सकेगा।

कुछ प्रगतिशील कृषकों द्वारा विगत वर्षों में ग्लेडुलियस, लिलियम आदि की बेमौसमी खेती प्रारम्भ की है और उन्हें इसकी अच्छी लागत भी प्राप्त हुई है। आजकल अनेक नगरों के आस-पास कुछ उद्यमी फूलों की खेती कर रहे हैं।

### औषधीय वृक्षों की खेती :

नया राज्य बनने के बाद पर्वतीय क्षेत्र में कृषि, बागवानी, औद्यानिकरण, पुष्प उत्पादन के अलावा जड़ी-बूटियों के कृषिकरण की संभावनाओं को वृक्ष खेती भी एक विकल्प के तौर पर अपनाया जा सकता है। कई स्थानों पर खेती कई कारणों नहीं की जा सकती है। धरती की ऊपरी परत के हर साल बहने, नमी की कमी, वनस्पति विहीनता, पारिस्थितिकीय असंतुलन, जमीन एवं पहाड़ में धरती से जुड़े प्रमुख पेड़ों आदि का रोग ग्रस्त होना और अन्दर से लगातार खोखला होते जाना, सिंचाई का पानी न होने, भूमिगत जलस्तर में कमी आदि समस्या यदि समाने हो तो ऐसे में औषधीय वृक्षों की खेती दोहरा लाभ प्रदान कर सकती है। इससे सम्बन्धित उद्योग धन्धों के लिये कच्चा माल भी प्राप्त होगा और पारिस्थितिकीय संतुलन स्थापित होने के साथ-साथ रोजगार के अवसरों का सृजन भी होगा और हिमालय समृद्धि भी होगा। इस क्षेत्र में अनेक प्रकार के औषधीय वृक्ष उगाये जा सकते हैं।

#### 1- दालचीनी/तेजपत्ता :

दालचीनी का वृक्ष हिमालय से 4000 से 7000 फीट की ऊंचाई पर पाया जाता है। यह तीव्र सुगन्ध युक्त गुणवाला वृक्ष है। इसके आसपास के पेड़ प्रायः निरोग और स्वस्थ रहते हैं। यहां तक कि आस-पास हानिकारक कीड़े-मकोड़े भी नहीं पनपते। आयुर्वेद में भी यह मानव के लिये एक महत्वपूर्ण एंटीबायोटिक जैसा काम करता है। टाइफाइड और टी.बी. राज्यक्षमा में भी दालचीनी युक्त सितोपलादि चूर्ण ही औषधि है। कभी प्राकृतिक रूप में उगने वाली दालचीनी वर्तमान समय में लुप्त होने के कगार पर है। एक ओर दालचीनी की पत्ती व छाल मसाले के काम आती है। वहीं दूसरी ओर दालचीनी से बने सितोपलादि चूर्ण की बाजार में कीमत 30 रु. से दस हजार रु. प्रति कुन्तल तक है तथा छाल एक रु. एक ग्राम अर्थात् एक लाख रु0 प्रति कुन्तल है। हमारे यहां दालचीनी से बनी अधिकांश दवाईयां विदेशों को निर्यात हो जाती हैं।

दालचीनी की पत्तियों में सुगन्धित तेल पाया जाता है जिसमें यूजीनोल, टरपीन और सिनेमिक एल्डिहाइड आदि नाम के रसायन पाये जाते हैं यह रसायन मानसिक आरोग्य प्रदान करते हैं। इन पौधों को सामान्यतः उगाना बड़ा कठिन है। इसकी उगी हुई पौध का रोपण भी कठिन है। इसके लिये सड़ी पत्तियों की खाद युक्त मिट्टी अत्यन्त आवश्यक है। दालचीनी के प्रति सरकार व जनसामान्य के ज्ञान का अन्दाजा इसी बात से लगाया जा सकता है कि जब एक तरफ उत्तराखण्ड में यह वृक्ष लुप्तप्रायः होने वाला है। वहीं दूसरी तरफ चमोली जनपद के नन्दप्रयाग क्षेत्र में इसका सड़क निर्माण में इनका सफाया हो गया।

अब इसकी आर्थिकी पर आया जाय एक दालचीनी का वृक्ष पांच साल से दस साल तक साल भर में कम से कम एक कुन्तल पत्तियां देता है तथा 15 साल का पेड़ कम से कम दो कुन्तल पत्तियां देता है। तथा 25 साल से ऊपर का पेड़ 5 कुन्तल सालाना पत्ती देता है। और दो सौ वर्षों तक यह बीज अलग से देता है। पारिस्थितिकीय आदि बातों के लाभ की बात अलग है। चूंकि इसको उगाने वाले को पेड़ की कोई खास देखभाल नहीं करनी होती है। इसेलिये इसके व्यवसाय से जुड़ा व्यक्ति के श्रम, सुरक्षा, खाद व पानी पर कोई खर्च नहीं करना आत्मनिर्भर हो जाता है। इसके अलावा दालचीनी के पेड़ों के बीच या इर्द गिर्द ऐसे पेड़ उगाये जा सकते हैं जो बेहद संवेदनशील हैं तथा जिनकी खुद की रोग प्रतिरोधक क्षमता कम होती है। इनकी फलतः गुणवत्ता उत्कृष्ट कोटि की होती है।

#### 2-बांस की खेती:

बांस दूसरी महत्वपूर्ण वनस्पति है जो उत्तराखण्ड में उगती है। बांस की कई प्रजातियां हैं परन्तु एक प्रजाति ऐसी है जिससे वंशलोचन प्राप्त होता है। यह वंशलोचन अपने आप में महत्वपूर्ण रोग प्रतिरोधक

औषधि है क्योंकि सामान्यतया बांस रोगग्रस्त नहीं होता। इसकी खेती राज्य के निचले व मध्य भाग में भली प्रकार से की जा सकती है। बांस झाड़ियों में भूमि कटाव को रोकने की जबरदस्त क्षमता होती है। जल अपरदन के अलावा अपक्षय को भी संतुलित करने की क्षमता बांस में पायी जाती है। वंशलोचन की आयुर्वेदिक दवाओं में बड़ी खपत है। भारत के प्रमुख आयुर्वेदिक औषधि निर्यात में सितोपलादि चूर्ण प्रमुख है और उसके तीन मुख्य अवयवों—दालचीनी, मिश्री व वंशलोचन में वंशलोचन तीसरा महत्वपूर्ण अवयव है। आज भी हर्बल मेडिसियन का दौर चल रहा है तो यह उत्पादन अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार की दृष्टि से भी आवश्यक है। साथ ही पूरे पहाड़ों की धरती को यदि दालचीनी व बांस से भर भी दिया जाय तो भी यह उत्पादन विश्व बाजार की मांग का एक अंश मात्र को ही पूरा कर पायेगा।

### 3—आंवला, हरड़ और बहेड़ा

इन तीनों फलों पाउडर से त्रिफला चूर्ण बनता है, जो कि अनेकों बीमारियों के काम आता है। सम्पूर्ण हिमालय में 5000 फीट से नीचे की ढालों पर आंवला आसानी से उगाया जा सकता है। आयुर्वेद के अन्तगत सभी प्रकार के ज्वर नेत्र विकार तथा उदर सम्बन्धी रोगों में इसका प्रयोग किया जाता है। त्रिफला का बाजार भाव 500 रु से 800 रु किलो के बीच है।

### 4—रीठा की खेती:

यह वृक्ष पहाड़ों पर बहुतायत से उगता है। प्राचीन काल में इस पर्वतीय क्षेत्र में रीठा ही वस्त्रों की धुलाई होती थी। रीठे की बहुतायत का अन्दाजा इसी बात से लगाया जा सकता है कि यहां बहुत से स्थानों के नाम रीठे के नाम से जुड़े यथा रीठा पाखा, रिठ जाबर, रीठाखाल आदि। आज जबकि कास्मेटिक सोप व शैम्पू बालों को व त्वचा को नुकसान पहुंचाने वाले साबित हो गये हैं तो ऐसे में रीठा उत्पादन और प्रासंगिक हो जाता है। हमारे यहां रीठा का बाजार भाव 4000 रु प्रति कुन्तल से आगे है। एक पेड़ रीठे का जो कि आठ साल में पहली बार फल आरम्भ करके लगभग 100 साल तक फल देता है। प्रारम्भ में 20 किग्रा से लेकर बाद में पांच कुन्तल तक फल देता है। जबकि बीजू पेड़ दूसरे साल से ही फल देने लगता है। इस प्रकार एक व्यक्ति यदि 10 पेड़ भी रीठे की खेती करता है तो शुरू के वर्षों में 10000 रु से लेकर 10 वर्ष पश्चात् उसकी तीन लाख रु तक सालाना कमाई हो सकती है, क्योंकि रीठे की रोग प्रतिरोधक क्षमता दालचीनी की तरह वनस्पतियों के लिये उपयोगी होती है।

जाहिर सी बात है कि आंवला, रीठा, शिकाकाई तीन ऐसे वृक्ष हैं जो शैम्पू उद्योग के लिये आधारभूत कच्चा माल प्रदान करते हैं। आज की तिथि में यदि इन तीनों को पीसकर बिना रसायनों के चूर्ण बनाकर ही बाजार में बेचा जाय तो अत्यन्त खपत होगी क्योंकि उच्च वर्ग और मध्यम वर्ग दोनों ही कास्मेटिक सोप से विमुख हो रहे हैं।

### 5—भीमल :

ग्रामीण अर्थव्यवस्था को सुदृढ़ करने की दिशा में भीमल एक उपयोगी वृक्ष साबित हो सकता है। भीमल पर आधारित व्यवसाय अत्यन्त कम लागत वाले होते हैं और इसे अतिरिक्त समय में भी चलाया जा सकता है। पर्यावरण की दृष्टि से भी यह अत्यन्त लाभकारी है। समुद्रतल से लगभग दो हजार मीटर की ऊँचाई पर उगने वाला भीमल ग्रीविया ऑप्टिवा कुल का पौधा है। इसे भीमल, जिसे 'भ्यूल' के नाम से भी जाना जाता है का आदिकाल से ही ग्रामीणों से जुड़ाव रहा है। लोग सदियों से भीमल की पत्तियों, टहनियों व जड़ों का उपयोग करते आए हैं। पर्वतीय क्षेत्र में भीमल की पत्तियों का उपयोग पशुओं के लिए उत्तम चारे के रूप में टहनियों से निकले रेशे से रस्सी और लकड़ी जलाने के काम में लाये जाते हैं।

भीमल के कच्चे रेशों के अलावा इसका उपयोग शैंपू के तौर पर बाल धोने में भी काफी पहले से ही होता रहा है। इसकी कच्ची टहनियों की छाल में पाया जानेवाला जुलाब चेहरे की सफाई के काम आता है। भीमल से प्राप्त चारा पशुओं के लिए अति पौष्टिक हाता है। उसके चारे में 20.48 प्रतिशत तक प्रोटीन की मात्रा पाई जाती है जो कि जाड़ों में बढ़ जाती है। एक पेड़ से एक वर्ष में औसतन 75 किग्रा तक चारा प्राप्त होता है। ग्रामीण क्षेत्रों में भीमल रेशा प्राप्त करने के एक प्रमुख स्रोत है। इसकसे निकालने के लिए किसी खास औजार अथवा सामान की आवश्यकता नहीं होती। भीमल की टहनियों को 15-20 दिन तक पानी में डुबोकर रखा जाता है। इसके उपरांत इसकी टहनियों को पटकने से रेशा व लकड़ी अलग-अलग हो जाते हैं। इसके रेशे से रस्सी, हैट, बैग, चटाइयां सहित अन्य कई वस्तुएं बनाई जाती हैं।

भीमल से 'हर्बल' शैंपू बनाकर अच्छी आय प्राप्त की जा सकती है। भीमल से तरल व पाउडर दोनों तरह के शैंपू बनाए जा सकते हैं। हर्बल शैंपू बनाने के लिए भीमल के ताजे कच्चे रेशों को पानी में उबालने पर गाढा घोल तैयार होने के बाद उसे आवश्यक रसायन मिलाकर दोबारा उबाला जाता है। घोल के ठंडा होने पर उसमें रंग व सुगंध मिला देते हैं और इस प्रकार शैंपू तैयार हो जाता है। इसी

प्रकार रेशों को सुखाने के बाद रीठा व आंवला पाउडर डालकर भी शैंपू बनाया जाता है। भीमल से तैयार प्रति लीटर शैंपू से दो सौ रु. का लाभ कमाया जा सकता है। एक अनुमान के अनुसार एक पेड़ से एक साल में 25 लीटर शैंपू तैयार किया जा सकता है। बिड़बना यह है कि भीमल के गुणों को देखते हुए यदि ग्रामीण इसके रोपण की योजना बनाये इसकी तो पौध की अनुपलब्धता इस दिशा में रोड़ा बन जाती है। तथा सिर के बाल झड़ने से रोकने व रूसी दूर करने के साथ-साथ सिर में तरावट के लिये इसकी छाल को कूट कर सिर धोने में प्रयुक्त किया जाता है।

## 6-खैर :

इसका उपयोग कत्था और गले की बीमारियों की औषधिया को बनाने के काम में आता है। खैर तराई और हिमालय की निचली पहाड़ियों में व्यापक रूप से उगाया जाता है। पान व पान मसाले में तो खैर विशेष उपयोग होता है। परन्तु वर्तमान समय में प्राकृतिक कत्थे के अभाव में कृत्रिम रसायनों से कत्था बनाया जाता है। खैर की लकड़ी के लिये बाजार की आवश्यकता नहीं है। इनकी वृत्ति धीमी होती है। उत्तराखण्ड से इन वृक्षों की लकड़ी को नजीबाबाद व सहारनपुर आदि शहरों में कत्था कम्पनियों में ले जाया जाता है जिन्हें सदा ही कच्चे माल की आवश्यकता पड़ती है। यह वृक्ष तराई में निर्जन इलाकों में उगाया जा सकता है। यह एक प्रचलित व्यवसायिक वृक्ष है।

## 7-टिमरू:

इस पौधे का वानस्पतिक नाम जैथेजाइलम आलेटम है। देश में इसकी अनेक प्रजातियां उगाई जा रही हैं। समुद्र तल से 3000 से 8000 फीट की ऊँचाई पर उगने वाले इस कांटेदार झाड़ीनुमा पेड़ की ऊँचाई तीन से पांच मीटर तक होती है। इसकी टहनियां, छाल व जड़ें दन्तमंजन बनाने में प्रयुक्त होती हैं क्योंकि इसका रस कीटाणुनाशक होता है। इसी कारण यहां आज भी पुराने लोग टिमरू की टहनियों का दातून के रूप में प्रयोग करते हैं। इसकी टहनियों, छाल व जड़ के अलावा इसके बीजों की घरेलू व विश्व बाजार में भारी मांग है। टिमरू के बीज का प्रचलित बाजार भाव 10 हजार रु0 प्रति कुन्तल से भी ऊपर है। मुख्य दवाई साबुन व टूथपेस्ट इनकी तो आज विश्व बाजार में सर्वाधिक खपत है और लाभकारी उद्यम है। लेकिन दुखद बात यह है कि आज यहां उत्तराखण्ड में बहुत ही कम दिखता है। इसके ज्यादा दोहन से यह किलमोड़ा की तरह लुप्त होने के कगार पर हैं।

## 8-थुनेर:

थुनेर भी एक ऐसा ही वृक्ष है जिसका प्रयोग औषधि के बनाने में होता है लेकिन अत्यधिक दोहन के कारण यह आज ऐसे दर्लभ पेड़ों की श्रेणी में है जिनके लिये जेल की सजा तक का प्राविधान है। इससे कैंसर रोग में प्रयुक्त होने वाली टैक्सोल नामक दवाई बनाई जाती है जो कि इसके निकलने वाले तेल से बनती है। इस तेल की लागत डेढ़ लाख रु0 प्रति लीटर तक होती है। 1500 मीटर से 3000 मीटर के मध्य उगने वाले इस वृक्ष के विभिन्न अवयवों से अस्थमा, सिरदर्द, हड्डियों को जोड़ने में किया जाता है। ऊँचाई पर रहने वाले भेटिया लाग इसकी पत्तियों का प्रयोग चायपत्ती के रूप में करते हैं। इस राज्य में यह वृक्ष पिथौरागढ़, चमोली, उत्तरकाशी आदि जनपदों में मिलता है।

कहना न होगा कि यदि इन औषधीय वृक्षों की खेती हो तो राज्य इस क्षेत्र में अपना एकाधिकार स्थापित कर सकता है, परन्तु जनता की जागरूकता के अभाव में यह उद्योग पनप नहीं पाया है। उपरोक्त औषधि प्रजाति के वृक्षों में कुछ विशेष कार्य नहीं करना होता है। एक बार इन्हें उगाने के बाद जीवन भर इनसे लाभांश प्राप्त किया जा सकता है।

## सब्जी उत्पादान में रोजगार :

सब्जियाँ, भारतीय भोजन एक प्रमुख अवयव है। इसलिये सब्जियां देश की कृषि एवं अर्थव्यवस्था में एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाती हैं। प्रदेश में 13 जनपदों में से उधमसिंह नगर और हरिद्वार पूर्ण रूप से मैदानी है। देहरादून गढ़वाल एवं चंपावत के कुछ हिस्से मैदानी व बाकी भाग पर्वतीय हैं जबकि शेष जनपद पूर्ण रूपेण पर्वतीय हैं और समुद्र तल से 300 मीटर से लेकर 6000 मीटर के मध्य पड़ते हैं।

उत्तराखण्ड के सम्पूर्ण भूभाग में कुल 16 प्रतिशत क्षेत्र कृषि योग्य भूमि है। इसका 18.5 प्रतिशत भाग सिंचित क्षेत्र घाटियों में है जहां पर अनाज उगाया जाता है। सब्जियों का उत्पादन व उनकी किस्म वातावरण, भूआकृति आदि पर निर्भर करता है। पर्वतीय क्षेत्र में जमीन की छोटी, छितरायी एवं टुकड़ा में बंटी होने के कारण अनाज का उत्पादन औद्योगिक उत्पादन के मुकाबले लाभ का सौदा नहीं है। लेकिन ज्यादातर फल ऐसी जमीन पर भी उगाये जा सकते हैं जो कि कृषि के अनुपयुक्त हैं। चूंकि अनाज का पर्वतीय क्षेत्र में बहुत ही कम उत्पादन होता है इसलिये औद्योगिक फसलों में सब्जियाँ व फल उत्तराखण्ड में आय का मुख्य स्रोत बन सकते हैं।

सब्जी हमारे एक आवश्यक भोज्य पदार्थ है जिसकी नियमित आपूर्ति की आवश्यकता होती है। एक अनुमान के अनुसार यदि एक व्यक्ति 1 दिन में 200 ग्राम सब्जी की आवश्यकता होती है तो प्रवृत्तीय क्षेत्र की 70 लाख की आबादी के लिये लगभग 14000 कुन्तल प्रतिदिन सब्जी चाहिये होती है। इसमें से 70 प्रतिशत सब्जी ग्रामीण क्षेत्रों में लोग स्वयं ही उगाते हैं लेकिन तब भी यहां पर प्रतिदिन खपत 3 से 4 हजार कुन्तल से कम नहीं है। और यह सब मैदान से आती है और मंहगी भी होती है और यहां से बाहर कम ही जाती है।

हिमालय क्षेत्र की मौसमी दशायें सब्जियों के उत्पादन के लिये बहुत अच्छी है। जिन सब्जियों को मौसम के परिवर्तन के कारण मैदान पर नहीं उगाया जा सकता है उनको यहाँ पर उस समय सहजता उगाया जा सकता है। बेमौसमी होने के कारण उनका अच्छा मूल्य मिल सकता है। इसलिये अनाज के मुकाबले उससे ज्यादा लाभ कमाया जा सकता है। एक समय इस क्षेत्र में ज्यादातर सब्जी मैदान से आती थी लेकिन आज राज्य में अनेक कृषक व युवा सब्जियां उगाकर अच्छी आय कमा रहे हैं। इससे आज कुछ सब्जी मैदान को आपूर्त होने लगी है।

आलू एवं प्याज कुछ ऐसी सदाबहार सब्जियां हैं जिनकी मांग साल भर रहती है। उत्तराखण्ड में यदि एक हैक्टेयर पर आलू लगाया जाय तो 50 नाली यानि 1 हैक्टेयर भूमि में औसतन 13 टन से 22 टन प्रति हैक्टेयर उपज हो सकती है। यदि औसत 17 टन भी उपज हुई तो 20 रुपये की दर से 3.40 लाख की आय हुई। यदि 1 लाख रुपये खाद बीज व श्रम आदि पर खर्च भी हुये तो भी एक फसल के 2.40 लाख कहीं नहीं गये। इसी प्रकार यहां पर सब्जी उत्पादन की असीम संभावनायें व अवसर हैं। इसलिये यहाँ पर नई कृषि तकनीकों व किस्मों को बढ़ावा देकर उत्पादन के स्तर को और बढ़ाया जा सकता है। सब्जी उत्पादन के असीम अवसरों के बावजूद अब तक इस दिशा में कोई बहुत ध्यान नहीं दिया गया है कि किस प्रकार सब्जियों का उत्पादन व उत्पादनशीलता को बढ़ायें इसलिये यह जरूरी है कि सब्जियों को सिंचित भूमि में उगाने तथा अनाज व लघु फसलों के लिये बेकार पड़ी भूमि का सदुपयोग किया जाय। किसी भी उत्पादन के मुख्य अवयव होते हैं उसकी किस्म, प्रयोग हाने वाली संवर्धन युक्तियां, पोषक तत्व, इत्यादि। इनमें 50 प्रतिशत योगदान अकेले ही किस्म का होता है।

यद्यपि पर्वतीय जलवायु सब्जियों के उत्पादन के लिये अनुकूल हैं किन्तु पहाड़ की विषम भौगोलिक परिस्थितियों के कारण कभी सब्जी को बड़े शहरों तक तत्काल पहुँचाना कठिन होता है। इसलिये यहां इस समस्या का निदान उन क्षेत्रों में सब्जियों का प्रसंस्करण है व प्रशीतन गृहों में भण्डारण से हो सकता है। राज्य में उगाई जाने वाली बेमौसमी सब्जियों में मटर, गाजर, फूल गोभी, शिमला मिर्च, टमाटर, कद्दू, खीरा, ककड़ी, भिन्डी, बीन्स के उत्पादन की बड़ी सम्भावनायें हैं। इसके अतिरिक्त बन्दगोभी, शलगम, गाजर के अलावा यूरोपियन सब्जियों का बीज उत्पादन नये रोजगार के अवसरों का सृजन कर सकता है।

स्थानीय किस्मों की अपेक्षा साधारण रूप से सुधारी गई किस्मों से हरित क्रान्ति का श्रेय नई किस्मों को ही जाता है जो कि जेनेटिक तौर पर इस प्रकार तैयार की जाती हैं कि उनसे पैदावार अधिक हो। आज उत्तरकाशी के पुरोला ब्लाक की कमल नदी के आस पास जिस प्रकार से लोगों ने आने को बदला है उससे प्रेरणा लेने की आवश्यकता है। यहां पर आज लोगों का रुझान नकदी फसलों की ओर हुआ है जो कि एक सार्थक कदम है।

### **दूसरे अन्य स्वरोजगार—**

राज्य में मशरूम उत्पादन, मत्स्यपालन और मौनपालन में भी बेहतरीन विकल्प है। आज राज्य में मशरूम के उत्पादन में हजारों लोगों का रोजी चलती है। मशरूम उगाना बहुत कठिन नहीं है। देहरादून दून घाटी मशरूम उत्पादक संघ के जरिये इसका विपणन हो रहा है। मशरूम उत्पादन के जरिये रोजगार की संभावना को देखते हुये कुछ क्षेत्रों में नये उद्यमी समाने आ रहे हैं। मौनपालन भी अच्छा रोजगार है जिसमें बहुत मेहनत की आवश्यकता नहीं होती है। आज राज्य के 1000 कुन्तल तक शहद का उत्पादन हो रहा है। चूंकि उत्तराखण्ड का शहद प्राकृतिक वातावरण में पैदा होता है इसलिये इसकी मांग बहुत अधिक है। मछली पालन का क्षेत्र कोई खास प्रगति नहीं हो सकी है किन्तु यदि चकबन्दी हो तो उत्तर पूर्वी राज्यों की तरह से यह उद्यम घर घर में विकसित हो सकता है।

### **जड़ी-बूटी रोजगार के अवसर—**

ऐलोपैथिक चिकित्सा पति के इतर प्रभाव को देखते हुये आज वनौषधियों के प्रति लोगों का रुझान बढ़ा है। रसायनों से बनी इस दवाइयों के प्रयोग से यदि एक रोग का निदान होता है तो दूसरी समस्या पैदा होने का खतरा बना रहता है। इनका पता चलने के बाद लोगों का झुकाव आयुर्वेदिक दवाइयों, वनौषधियों की ओर हो रहा है।

आधुनिक चिकित्सा पति के चकाचौंध में हम अपनी पुरानी दवाईयों को भूल गये और इसने एक गलत परम्परा को जन्म दिया। हम इन पौधों की उपचार 'विक्रम' के ज्ञान को भूलते चले गये। औषधीय पौधे हर स्थान पर उगते हों ऐसा नहीं है। अलग-अलग वातावरण व भौगोलिक परिस्थितियों के अनुसार

यह उगती हैं। हिमालयी राज्य उत्तराखण्ड क्षेत्र वनाषधियों के उत्पादन के लिये स्वर्ग है। यहां पर प्राकृतिक रूप से यह उगती रही है, लेकिन इनके लगातार दोहन से ये विलुप्ति के कगार पर आ गई हैं।

इन्हीं जड़ी बूटियों का उत्पादन इस क्षेत्र में उत्पादन का नया आयाम खोल सकता है और यहां के लोगों को आर्थिक आधार पदान कर सकता है। आज विश्व में औषधीय व सगन्ध पादपों का उत्पादन 7 प्रतिशत की गति से बढ़ रहा है। एक अनुमान के अनुसार भारत में 2012 तक 10000 करोड़ रुपये की वनौषधियों का उत्पादन हो रहा था। उत्तराखण्ड राज्य में वनौषधियों की उत्पादन की असीम संभावनायें हैं। राज्य में 500 प्रकार पौधे ऐसे हैं जिनकी भारी मांग हैं। इनके अलावा 160 ऐसे औषधि पौधे हैं जिनकी लुप्त प्रजातियों के रूप में पहचान की गई है। इसलिये इनके कृषिकरण के प्रोत्साहन और इनको बचाने की भी वैज्ञानिकों पर बड़ी जिम्मेवारी है। इस राज्य से लगभग 300 करोड़ रुपये मूल्य की वनौषधियों का निर्यात हो रहा है, लेकिन न इसका कोई रिकार्ड ही है और न इनकी कीमत का ही निर्धारण आज तक हो पाया है। उत्तराखण्ड में अधिकांश कृषक लघु व सीमान्त हैं, जिनकी औसत भूमि उपलब्धता 4 नाली से भी कम है। यह जमीन किसानों को पारम्परिक खेती से सम्पन्न नहीं बना सकती है। यह भूमि तभी आय का जरिया बन सकती है जबकि इन पर अधिक आय देने वाली वनौषधियों को पैदा किया जाय। इसे देखते हुये राज्य को जड़ी बूटी प्रदेश बनाने की घोषणा भी हुई थी। लेकिन यहां पर भी वही भूमि की बाधा है। एक नये क्षेत्र में काम करने को जोखिम तभी लिया जा सकता है जबकि अपना चक हो।

### संभावनामय पशुपालन—

उत्तराखण्ड में एक समय पशुपालन की समृ( परम्परा थी। लोग एक दूसरे से मिलने के बाद कुशल क्षेम, उनके बच्चों की खबर के साथ पशुओं की संख्या भी पूछा करते थे। कृषि व पशुपालन एक दूसरे के पूरक थे। उत्तराखण्ड के तराई या घाटी क्षेत्रों को छोड़ दिया जाय तो ढालदार खेतों की सदियों से अलाभकारी खेती को हाड़तोड़ मेहनत देने के लिए किसान के पास पशुपालन की शक्ति थी। जहां हल जोतने के लिये बैल उसका सहायक होता था वहीं वे प्रतिवर्ष वर्षा से बह जाने माटी को पशु खाद से नवजीवन प्रदान करती थी। यही पशु उसके लिये आर्थिकी का आधार भी रहे। दूध व उससे बने पदार्थ जहां उसके खान पान का अंग थे वहीं पशुओं से प्राप्त होने वाले ऊन एवं मांस उसकी अन्य आवश्यकतायें भी पूर्ण होती थीं।

लेकिन आज यहां पशुपालन वाले समृ( गांवों में पशु संख्या घट रही है व यहां काश्तकार की पशुपालन के प्रति अरुचि और पशुओं से प्राप्त होने वाले लाभ के प्रति उसका नकारात्मक रवैया बढ़ता जा रहा है। निश्चय ही पशुपालन एक श्रमसाध्य काम है। थैली बन्द दूध की सुलभ उपलब्धता के कारण लोग श्रम से विमुख हो रहे हैं बाकी कसर हालातों ने पूरी कर दी है।

गांव घरों की महिलाएं जानती हैं कि एक किग्रा दूध के लिए मुंह अंधेरे निकल कर चारा पत्ती लाना कितना कठिन है। इन्हीं कठिनाइयों के कारण नयी पीढ़ी सम्भवतः पशुपालन से विरत हो रही है लेकिन यह मात्र कारण नहीं है। पशुपालन की व अन्य अनुदान योजनाओं ने भ्रष्टाचार का खेल खेला है उसने अच्छे भले काश्तकार को कार्य के प्रति उदासीन बना दिया।

उत्तराखण्ड में पशुपालन की असीम सम्भावनाओं के बावजूद उन्हें प्रोत्साहित करने और योजनाओं के क्रियान्वयन में ईमानदारी न होने का एक प्रमुख कारण है सरकारी नीति नियंताओं में संकल्प शक्ति हो तो यह व्यवसाय एक बार फिर से पनप सकता है और मेरठ मुरादाबाद से आने वाले दूध की थैली पर आश्रितता कम हो सकती है। आज हम 40 रुपये प्रति लीटर थैली का दूध खरीदने को तैयार रहते हैं लेकिन वैज्ञानिक तरीके से पशुपालन करने को आगे नहीं आ रहे हैं। एक ओर मैदान में पशुपालन से लोग आय कमा रहे हैं तो दूसरी ओर हम इस दिशा में आगे नहीं बढ़ पा रहे हैं। यह उद्यम भी पूरी तरह से संभावनामय है। लेकिन उत्तराखण्ड ही नहीं भारत में पशु के बिना समाज की गाड़ी आगे नहीं बढ़ सकती है। इसलिये उत्साही युवाओं को सामूहिक से डेरी परियोजनाओं हेतु जमीन व ण देकर उसकी सुनिश्चितता तय करनी होगी और उसमें महिलाओं की अनिवार्य भागीदारी भी। पर्वतीय क्षेत्र में पशु से लेकर पशुशालाओं के स्तर, उनके चारे व स्वास्थ्य का भी ख्याल करना होगा। स्थानिक भौगोलिक परिस्थितियों के अनुसार पशुओं का चयन करना होगा। एक दम विदेशी व मैदानी पशुओं को यहां लाकर पालने के अनुभव अच्छे नहीं रहे हैं। चकबन्दी हो और जब गौवंश, महिष वंश, भेड़ बकरी और घोड़ा पालन के पालन में आर्थिकी में सहायता दी जाय तो निश्चित रूप से उत्तराखण्ड को खुशहाली लौट सकती है।

### बीज एवं पौध में रोजगार :

करने वालों के लिये बहुत कुछ है। उत्तराखण्ड में एक क्षेत्र रोजगार का जरिया बन सकता है वह है अच्छे बीज व पौध का कारोबार। यदि अच्छे बीज व पौध उपलब्ध हो तो कौन न लेना चाहेगा लेकिन

होता यह है कि जब हम बोज और पौध लेते समय यह ध्यान नहीं देते हैं कि उसे कौन बेच रहा है। बाद में जब बीज को बाया जाता है या पौध लगाते हैं तो कुछ का कुछ हो जाता है।

इसलिये अच्छे बीजों व पौध का होना नितान्त आवश्यक है। आज नई नई तकनीक से पौध तैयार हो रही हैं। कटिंग, ग्राफ्टिंग के अलावा टिशू कल्चर विधियां प्रमुख विधियां हैं जिसमें अच्छी गुणवत्ता वाले पौधे तैयार होते हैं। आज बड़ी संख्या में नवयुवक बायो टेक्नोलॉजी का कोर्स कर रहे हैं वे बीज एवं पौध के इस क्षेत्र में आगे सकते हैं। सामान्यतौर पर पुरानी विधियों से एक सीजन में एक ही बात पौध तैयार होती हैं और सीमित संख्या में इनको तैयार किया जा सकता है। किन्तु टिशूकल्चर विधि एक ऐसी विधि है जिसमें साल भर गुणवत्तायुक्त पौध तैयार की जा सकती है। इस क्षेत्र में मात्र कुछ लाख के निवेश से अच्छी आय कमाई जा सकती है। इसी प्रकार से राज्य में स्थानीय बीजों की मांग सदा बनी रहती है जो संकर नस्ल के बीजों के मुकाबले अधिक प्रतिरोधी होते हैं। स्थानीय बीजों से उगने वाली सब्जियों का स्वाद भी भिन्न होता है।

म म म

# कैसे होती है चकबन्दी

भारत की आर्थिकी जहां कृषि पर आधारित है वहां उद्योगों का योगदान भी कम नहीं है। देश के प्रत्येक राज्य का अपना-अपना आर्थिक ढांचा है। हर राज्य में कृषि होती है साथ में दूसरी आर्थिक गतिविधियां उसे मजबूती प्रदान करती

उत्तराखण्ड भी एक ऐसा ही राज्य है जहां मुख्य रूप से दो प्रकार की गतिविधियां दिखती है जिनमें से एक कृषि है तो दूसरी है पर्यटन/तीर्थाटन। पर्यटन के क्षेत्र में यह राज्य है किन्तु विगत दो साल से राज्य में लगातार आपदाओं के आने से यहां की आर्थिकी को मजबूती प्रदान करने वाला यह क्षेत्र धराशाही सा हो रखा है। कई लोग जो ज्यादा आय के मोह में फंसकर कृषि छोड़ पर्यटन के क्षेत्र में आये थे फिर से अपनी जड़ों की ओर देखने लगे हैं।

उत्तराखण्ड का लगभग 90 प्रतिशत भूभाग पर्वतीय है। जहां की अधिसंख्य जनसंख्या ग्रामीण है। गांवों से ही हमारी पहचान है। एक समय जो गांव उत्पादनशीलता के केन्द्र थे, और जहां पर कृषि जन्य व दूसरे क्रियाकलापों में रोजगार के अनेक अवसर होते थे। लेकिन राज्य बनने के बाद पर्वतीय क्षेत्र में कृषि क्षेत्र पर ध्यान न दिये जाने के कारण यह राज्य कृषि व कृषि आधारित आर्थिकी के क्षेत्र में पीछे हो चला है इससे राज्य में एक असन्तुलन की स्थिति पैदा हो गई है।

पारिवारिक विभाजन के कारण राज्य के पर्वतीय अंचल में खेत आज इस कदर बंट चुके हैं कि बिखरे खेतों पर मेहनत व योजना बना कर काम करना संभव नहीं हो पा रहा और खेती का कार्य अलाभप्रद हाता चला जा रहा है। इस समस्या को देख जान नई पीढ़ी तेजी से जमीन से विमुख होती जा रही है। फलस्वरूप दिन-प्रतिदिन कृषि उत्पादन गिर रहा है। पलायन से पारम्परिक काम-धन्धे ठप होते जा रहे हैं। यहां तक कि पशुपालन भी काफी कम हो गया है।

यहां पर साल दर साल सैकड़ा हैक्टेयर कृषि योग्य भूमि के बंजर भूमि में तब्दील होने से चारों ओर जंगली जानवरों का वर्चस्व होता जा रहा है। इन हालातों में ग्रामीण आबादी के पलायन में तेजी आ रही है। अपनी जड़ों से कटने से यहां का समाज की संस्कृति, बोली-भाषा, परम्पराओं बिखरने से उसकी पहचान व अस्तित्व के छिन्न भिन्न होने का संकट आता जा रहा है।

## चकबन्दी की अवधारणा :

आजादी से पूर्व भारत के अनेक प्रान्तों में जब भूमि सम्बन्धी ऐसी समस्या उभरी तो बिखरे खेतों के एकत्रीकरण यानि चकबन्दी करने का विचार उभरा। इसके लिये प्रारूप व नियम बनने के बाद कुछ राज्यों में आजादी से पहले ही यह लागू कर दी गई। आजादी के बाद भी अनेक दूसरे राज्यों में भूमि की अनिवार्य चकबन्दी की गई। उ.प्र. में भी सन् 1952 में चकबन्दी करने का निर्णय लिया गया किन्तु तब यह कहकर इसे पर्वतीय क्षेत्र में लागू नहीं किया गया कि यहां के लिये अलग प्रकार के नियम बनाने के बाद लागू किया जायेगा। किन्तु ऐसा अब तक नहीं हो सका है। इससे समस्यायें पैदा होने लगी। इस वजह से यहां पर योजना बना कर कृषि करना कठिन हो गया और युवाओं को रुझान इस ओर घटने लगा।

इसके निदान के लिये यदि उ.प्र. सरकार ने उत्तराखण्ड में इसे लागू करने हेतु कदम उठाये होते तो यह समस्या कदाचित सामने न आती। इसके सापेक्ष पहाड़ी राज्य हिमाचल जो भौगोलिक दृष्टि से इस समस्या के समाधान के लिये 'हिमाचल प्रदेश टेनेन्सी एण्ड रिफार्म एक्ट' जैसा भू-सुधार कानून लागू किया जिससे बाद वहां की कृषि में परिवर्तन आने लगा, लेकिन इस राज्य में अब तक ऐसा नहीं हो पाया है। आज हिमाचल में लाभकारी खेती हो रही है। इससे वहां के गांव खुशहाल हैं और वहां पर पलायन की समस्या नहीं है। बागवानी एवं कृषि कार्यो ने उनको काफी हद तक आत्मनिर्भर बनाया है।

## उत्तराखण्ड में चकबन्दी की आवश्यकता :

उत्तराखण्ड की जमीन भी अनेक प्रकार से हमारे उपयोग में आ सकती है। इसके लिये कहां पर क्या उगाया जा सकता है इसके लिये काम करने की आवश्यकता है लेकिन उससे पहले यहां की जमीन को लेकर भू-सुधार करने की भी उतनी ही आवश्यकता है। ताकि लोग अपने चेक पर लोग अलग ईकाई होने पर अपनी रुचि व योजना बना कर काम कर सकें।

यह तभी संभव हो सकता है जब यहां पर खेतों का एकत्रीकरण हो। पहाड़ में हर जगह मिट्टी की गुणवत्ता, अलग ऊंचाई एवं धूप के समय के अनुसार हर फसल का उत्पादन समान कदापि नहीं हो सकता है। इसलिये हर खेत का अलग गुण हाने से कही कुछ अच्छा उगता है तो कही कुछ। जिन लोगों ने अपनी मेहनत सोच व संकल्प के संटवारा आदि कर चकों को बना कर वैज्ञानिक तरीके से काम किया है वे लोग हमारे लिये प्रेरणा बने हैं। लेकिन हर किसी के लिये ऐसा करना संभव इसलिये नहीं है क्यों कि भूमि चक बनाना या संटवारा करना बहुत कठिन काम है। और यदि सरकार चक बनाकर दे देती है तो इसी से इस पहाड़ी राज्य के विकास का रास्ता निकलता है। राज्य बनने के समय राजनीतिक दलों ने जमीन के बिखरे खेतों के एकत्रीकरण की बात की थी लेकिन राज्य बनने के

14 साल बाद भी चकबन्दी पर सरकारों का ढुल-मुल रवैया ही दिखा है। इससे ही तमाम दूसरी विसंगतियों पैदा हुई और वह यहां के लोगों के हाथों से भी छिनती चली जा रही है।

### **जमीनी हालात :**

सन् 2000 के आंकड़ों पर नजर डालने से पता चलता है कि राज्य की कुल 831225 हेक्टेयर कृषि भूमि 855980 परिवारों के नाम दर्ज थी। इनमें 5 एकड़ से 10 एकड़, 10 एकड़ से 25 एकड़ और 25 एकड़ से ऊपर की तीनों श्रेणियों की जोतों की संख्या 108863 थी। इन 108863 परिवारों के नाम 402422 हेक्टेयर कृषि भूमि दर्ज थी यानी राज्य की कुल कृषि भूमि का लगभग आधा भाग। बाकी पाँच एकड़ से कम जोत वाले 747117 परिवारों के नाम मात्र 428803 हेक्टेयर भूमि दर्ज थी। पहाड़ का जहां तक सवाल है यह कृषि भूमि बेहद कम है और वह भी कई-कई जगहों पर बिखरी हुई है। बिखरी होने से लोगों ने उस पर खेती कार्य करना छोड़ते चले जा रहे हैं। राज्य के कुछ क्षेत्रों यह समस्या अधिक गतिवान है जबकि कुछ क्षेत्रों में यह जन्म लेने लगी है। इसी प्रकार से राज्य की एक बड़ी कृषक आबादी भूमिहीन जैसी भी है। पलायन के कारण बीच के खेतों के बंजर होने से उसके उपयोग में न आने से दूसरों के लिये भी समस्यायें पैदा हो रही हैं।

### **क्या है चकबन्दी :**

किसान की कुल जोत जमीन जो उसके नाम बन्दोबस्त रिकार्ड में दर्ज है तथा यत्र तत्र बिखरी हुई है उतने ही मूल्य के बराबर रास्तों सार्वजनिक सुविधाओं के लिये यथोचित स्थान छोड़ते हुये किसी एक जगह पर एकमुश्त चक के रूप में जमीन देना ही चकबन्दी है। लेकिन चकबन्दी बिखरे खेतों को इकट्ठा करने मात्र तक नहीं है बल्कि इसके अतिरिक्त भी इस प्रक्रिया में भूमि का बन्दोबस्त किया जाता है, भू-अभिलेखों का पुर्नरीक्षण एवं शुक्तिकरण किया जाता है और ग्रामों का नियोजन किया जाता है।

### **चकबन्दी कैसे की जाती है :**

#### **1. स्टाफ—**

शासन द्वारा किसी भी क्षेत्र को चकबन्दी क्रियाओं के अन्तर्गत लिए जाने के उपरान्त स्वाभाविक है कि वहां इस कार्य को सम्पन्न करने हेतु अधिकारियों व कर्मचारियों की नियुक्ति की जाती है। इस योजना के अन्तर्गत जो अधिकारी व कर्मचारी नियुक्त होते हैं उनका क्रम निम्न प्रकार होता है — निदेशक/आयुक्त चकबन्दी, संयुक्त संचालक चकबन्दी, उप संचालक चकबन्दी, बन्दोबस्त अधिकारी चकबन्दी, चकबन्दी अधिकारी, सहायक चकबन्दी अधिकारी, चकबन्दी कर्ता, चकबन्दी लेखपाल, ड्राफ्ट्समैन, ट्रेसर, चपरासी तथा चेनमैन एवं अतिरिक्त अधिकारियों के कार्यालयों के लिए लिपिक।

योजना में एक इकाई सहायक चकबन्दी अधिकारी का क्षेत्र होता है। इस क्षेत्र में लगभग पांच छः हजार एकड़ कृषि योग्य भूमि ली जाती है। सहायक चकबन्दी अधिकारी के अधीन दो चकबन्दी कर्ता, 6 लेखपाल, 1 पेशकार, 1 चपरासी, 1 डाक रनर होता है। चकबन्दीकर्ता के पास उक्त 6 लेखपालों में से 3-3 लेखपाल एवं 1-1 चेनमैन होता है।

चकबन्दी अधिकारी के अधीन 3-5 सहायक चकबन्दी अधिकारी क्षेत्र होते हैं तथा एक पेशकार, एक अलहमद एवं एक ड्राफ्ट्समैन एवं दो ट्रेसर एवं दो चपरासी होते हैं। वहीं बन्दोबस्त अधिकारी चकबन्दी के अधीन 3-5 तक चकबन्दी अधिकारी क्षेत्र होते हैं एवं कार्यालय का लिपिक वर्ग आदि होता है।

उपसंचालक चकबन्दी का कार्य, कार्य कम होने की दशा में सम्बन्धित जिला अधिकारी करते हैं जो वैसे भी जिला उप-संचालक चकबन्दी होते ही हैं। अन्यथा पृथक से भी उपसंचालक चकबन्दी की नियुक्ति शासन द्वारा की जाती है। सहायक चकबन्दी अधिकारी का कार्यालय उसके क्षेत्र में ही होना जनहित में अनिवार्य होता है।

चकबन्दी क्रियाओं के सफल कार्यान्वयन के लिए यह आवश्यक है कि इस योजना में लगाये गये अधिकारी कर्मचारी इस योजना के प्रति समर्पित हों। उनका चुनाव ही इस योजना के सफल कार्यान्वयन के लिए उत्तरदायी होगा।

### **चकबन्दी क्रियाओं का प्रारम्भ :**

#### **1. चकबन्दी क्रियाओं के अन्तर्गत ग्राम को लिए जाने की सूचना :**

उ.प्र. में यह जैसे की जाती है ठीक यही प्रक्रिया पहाड़ों पर भी सुगमता से अपनायी जा सकती है। किसी क्षेत्र का चकबन्दी क्रियाओं के अन्तर्गत लिये जाने का सरकारी गजट में प्रकाशन होने के उपरान्त, सहायक चकबन्दी अधिकारी विधिवत चकबन्दी कर्ता द्वारा हर गांव में इसका प्रकाशन ग्राम सभा की मीटिंग बुलाकर करते हैं। इसमें ग्रामवासियों को यह बताया जाता है कि आज से ग्राम में चकबन्दी क्रियायें आरम्भ हो गयी हैं। इसलिये जब तक वह ग्राम चकबन्दी क्रियाओं के अन्तर्गत है, कोई भी खातेदार या अन्य व्यक्ति कृषि योग्य खाते की भूमि का क्रय-विक्रय बिना बन्दोबस्त अधिकारी

चकबन्दी की अनुमति के नहीं कर सकता है। कृषि कार्य के अतिरिक्त खाते की भूमि का उपयोग अन्य किसी प्रयोजन के लिए नहीं किया जा सकता है। समस्त वाद ;मुकद्मंद्द जहां भी जिस भी न्यायालय भूमि के सम्बन्ध में चल रहें हों सब स्थगित हो जायेंगे अर्थात् ऐसे मामले चकबन्दी न्यायालयों के अतिरिक्त अन्य किसी न्यायालय में नहीं चल सकते हैं आदि।

## 2. चकबन्दी कमेटी का गठन :

विधिवत ऐजेन्डा देकर ग्रामवासियों को सूचित किया जाता है कि भूमि प्रबन्धक समिति में से चकबन्दी कमेटी के अध्यक्ष एवं सदस्यों का चुनाव किया जायेगा। निर्धारित तिथि पर चकबन्दी कर्ता इस कमेटी का गठन करता है। इसमें पिछड़ी एवं जनजाती का मेम्बर होना आवश्यक है। अन्यथा बन्दोबस्त अधिकारी चकबन्दी द्वारा वह मनोनीत भी किया जा सकता है। यह चकबन्दी समिति चकबन्दी के हर स्तर के काम में चकबन्दी कर्मचारियों को अपना सुझाव व सहायता करती है। जिसके सुझावों का समुचित ध्यान रखा जाता है और अधिकांश अहम कार्य उसके परामर्श से सम्पन्न किये जाते हैं।

## 3. शजरा ;नक्शाद्द दुरुस्ती :

चकबन्दी लेखपाल सरसरी तौर पर गांव के खेतों का मौके पर नक्शे से मिलान करता है। मामूली नक्शा दुरुस्ती लेखपाल मौकानुसार स्वयं कर देता है। उसके इस कार्य की जांच चकबन्दीकर्ता एवं सहायक चकबन्दी अधिकारी अपने स्तर से भी करते हैं। यदि नक्शे व मौके पर खेतों के क्षेत्रफल, आकृति आदि में अधिक असमानता मिलती है तो उस ग्राम का चकबन्दी स्टाफ द्वारा दोबारा सर्वे किया जाता है इसमें केवल नक्शों को मौके के हिसाब से बनाया जाता है तथा खेतों का तदनुसार क्षेत्रफल अंकित किया जाता है।

## 4. चकबन्दी पड़ताल :

नक्शा दुरुस्ती के उपरान्त लेखपाल तहसील से प्राप्त खसरे के आधार पर खसरा बनाता है जिसमें अन्य बातों का समय समय पर इन्द्राज किया जाता है। इस चकबन्दी खसरें में संबंधित ग्राम के समस्त खेतों को क्रमवार अंकित किया जाता है। प्रत्येक खेत का खसरे में दर्ज क्षेत्रफल के साथ-साथ नक्शा दुरुस्ती के समय पाये गये क्षेत्रफल को भी अंकित किया जाता है। लेखापाल इस खसरे में प्रत्येक खेत की किस्म जमीन जो पूर्व बन्दोबस्त में दर्ज है को भी अंकित करता है। खेत सिंचित है असिंचित है, एक फसली है, द्विफसली है तहसील से प्राप्त खसरे के आधार पर दर्ज करता है।

जब यह अभिलेख लेखपाल द्वारा तैयार कर लिया जाता है तब विधिवत ग्राम में ऐजेन्डा जारी किया जाता है कि अमुक दिनांक को चकबन्दीकर्ता गांवों में खेत खेत पड़ताल करने को आयेगा। अतः चकबन्दी समिति एवं अन्य कृषक उस दिन उपस्थित रहकर कार्य के निष्पादन में अपना सहयोग दें। निर्धारित तिथि पर चकबन्दीकर्ता एवं लेखपाल ग्राम में निर्धारित स्थान पर पहुंचकर चकबन्दी कमेटी की उपस्थिति में पड़ताल में क्या कार्य होगा तथा तदनुसार कार्यवाही पुस्तक में सब बातों के दर्ज कर, चकबन्दी समिति व उपस्थित कृषकों के साथ मौके पर जाता है तथा खेत नं. 1 से मौके पर पड़ताल का कार्य करता है। इसमें चकबन्दीकर्ता प्रत्येक खेत पर खातेदार के अतिरिक्त यदि किसी अन्य व्यक्ति का कब्जा बताया जाता है, या कब्जेदार स्वयं बताता है तो उसका कब्जा कितने वर्षों से किस हैसियत से है का इन्द्राज चकबन्दीकर्ता इस खसरे में करता है।

उस खेत में पेड़, कुंआ, या अन्य जो भी उन्नति के साधन हों का इन्द्राज भी किया जाता है। खेत एक फसली है, द्विफसली है, बंजर है, सिंचाई का क्या साधन है, गांवों की आबादी से कितनी दूरी पर है, खेत की प्राकृतिक बनावट कैसी है अर्थात् खेत समतल है या उबड़-खाबड़ है, जंगल या किसी बाग के पास है अर्थात् खेत की पूरी जन्मपत्री तैयार करता है।

## 5. सत्यापन ;तस्दीकद्द खतौनी :

चकबन्दी समिति एवं ग्राम के कृषकों को समुचित सूचना देने के उपरान्त चकबन्दीकर्ता ग्राम में जाता है तहसील से प्राप्त खतौनी का खातेवार प्रत्येक खातेदार को पढ़कर सुनाता है इसमें दर्ज खातेदारों का नाम, पिता का नाम, निवास स्थान, सही अंकित हैं या नहीं यह पूछता है। खाते में खातेदारों के क्या अंश हैं, किसी सह-खातेदार भाई, चाचा, ताऊ, भतीजा, पोता, आदि अथवा बेनामा आदि से संयुक्त रूप से ली गयी भूमि में किसी का नाम अंकित होने से रह तो नहीं गया है, किसी खातेदार का नाम खाते में गलत तरीके से तो दर्ज नहीं है की जानकारी करता है। अगर इस प्रकार की कोई गलती या कमी खाते में पाई जाती है तो चकबन्दी कर्ता खातेवार उसका इन्द्राज एक रजिस्टर में करता है। सामान्य सी बात है कि चकबन्दी समिति व अन्य कृषकों की उपस्थिति में सही गलतियाँ या कमियों का पता चल जाता है। इस रजिस्टर में सत्यापन खतौनी के समय पाई गयी गलतियों के साथ पड़ताल के समय पाये गये कब्जेदारों को भी इन्द्राज किया जाता है।

चकबन्दीकर्ता उक्त सत्यापन खतौनी के समय खाते में दर्ज नाबालिग, जड़, पागल, की एक सूची भी बनाता है जिसमें यदि पहले से उनके अभिभावक दर्ज नहीं है तो अभिभावक का नाम उसका

नाबालिग, जड़, पागल से रिश्ता भी दर्ज करता है। इस पर सहायक चकबन्दी अधिकारी विधिवत आदेश पारित करता है जिससे चकबन्दी क्रियाओं के दौरान उनके हितों की रक्षा हो सके।

#### 6. विनिमय अनुपात मूल्य लगाने हेतु खेतों का चुनाव :

विधिवत चकबन्दी समिति व ग्रामवासियों का सूचना देने के उपरान्त सहायक चकबन्दी अधिकारी गांव में जाता है और उपस्थिति लोगों को विनिमय अनुपात के बारे में कि वह किस प्रकार से लगाया जाता है, अवगत कराता है। यह एक अहम् कार्य है। इसमें गांवों के समस्त खेतों में से दो चार खेत ऐसे चुने जाते हैं जो आपस में हर दशा में एक समान हों अर्थात् उपज, किस्म, जमीन सिंचाई के साधन एवं गांवों से निकटता में एक ही श्रेणी के हों ऐसे खेत दोषरहित गांव के समस्त खेतों में सबसे उत्तम चुने जाते हैं। ऐसे दो चार जो भी खेत चुने जाते हैं उनका मौका मुआयना करने के उपरान्त वह मानक गाटे, खेतद्ध घोषित कर दिये जाते हैं। इस प्रकार शेष खेतों का विनिमय अनुपात सहायक चकबन्दी अधिकारी द्वारा चकबन्दी समिति एवं उपस्थिति जानकार किसानों की मदद से निर्धारित किया जाता है। इन मानक गाटों, खेतोंद्ध का मूल्यांकन 100 पैसे प्रति बीघा एकड़ हेक्टेयर के हिसाब से होता है और तदनुसार इनके अनुपात से अन्य खेतों का मूल्यांकन निर्धारित किया जाता है। यह एक बाट का काम करते हैं।

#### 7. खेतों के विनिमय अनुपात का लगाया जाना :

यह कार्य सहायक चकबन्दी अधिकारी के द्वारा होता है जो ग्राम में जाता है और बैठक बुलाकर उपस्थित व्यक्तियों को कैसे खेतों का विनिमय अनुपात, खेतों की कीमतद्ध लगाया जायेगा बताता है। इसमें ग्राम के खेत जो लगभग एक समान हों समानता के आधार पर कई खण्डों में बांटा जाता है। उन बड़े खण्डों का आपस में किस कीमत यानि विनिमय अनुपात से अदल-बदल होगा मोटे तौर पर शजरे में अंकित किया जाता है। अर्थात् एक खण्ड जो सबसे उत्तम है मानक गाटों के तुलना में उसकी क्या कीमत है। इसी प्रकार सभी खण्डों का मूल्यांकन मानक गाटों से तुलना कर उनका विनिमय अनुपात निर्धारित किया जाता है।

इसके उपरान्त स. चकबन्दी अधिकारी प्रत्येक खेत में जाकर हर खेत की तुलना उपरोक्त 100 पैसे के छांटे गये गाटों, खेतोंद्ध से करता है और तदनुसार उपस्थिति चकबन्दी समिति तथा अन्य कृषकों एवं अपने विवेक से हर खेत का विनिमय अनुपात निर्धारित करता है। यह विनिमय अनुपात 5. 10.15.20 पैसे से लेकर 95 पैसे तक हो सकता है इस विनिमय अनुपात को अंकों में अधिकारी नक्शे पर भी अंकित करता है। इसी दौरान खेत में विद्यमान पेड़, कुंआ तथा अन्य उन्नति के साधनों का प्रतिकर भी चकबन्दी समिति तथा कृषकों के एवं अपने विवेक के आधार पर तय करता है उसकी जांच भी मौके पर करता है। गांव में मीटिंग के दौरान सहायक चकबन्दी अधिकारी कुछ प्रतिशत चकबन्दी कर्ता द्वारा की गयी सत्यापन खतौनी के समय बताये गयी अशु(यों एवं तनाजों की जांच भी करता है तथा चकबन्दीकर्ता द्वारा तैयार की गयी नाबालिग, जड़, पागल आदि के अभिभावकों की नियुक्ति भी करता है ताकि चकबन्दी क्रियाओं के दौरान उनके हितों की रक्षा की जा सके।

#### 8. सार्वजनिक प्रयोजन हेतु भूमि का सुरक्षित किया जाना :

उक्त बात का प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से चकबन्दी क्रियाओं से कोई संबंध नहीं है, लेकिन गांव के विकास से लिए यह अति आवश्यक है। इसके लिए सहायक चकबन्दी अधिकारी विधिवत सूचना के उपरान्त गांव में चकबन्दी समिति व अन्य कृषकों व अकृषकों अर्थात् समस्त ग्रामवासियों की एक मीटिंग आहूत करता है। उपस्थिति व्यक्तियों को बताया जाता है कि यह कार्यवाही उनके गांव के नियोजन के लिए की जा रही है। मुख्य रूप से इसमें गांव की आबादी के विस्तार, भूमिहीन तथा अनुसूचित जाति के लोगों के लिए आवास, खाद के गढ्ढों, ग्रामीण मार्गों के लिए, चक मार्ग, स्कूल, पंचायत घर, अस्पताल क्रीडास्थल वृक्षारोपण, सार्वजनिक पौधशाला, नहर, गूल, मरघट, कब्रिस्तान, सार्वजनिक सिंचाई के लिए टैंक आदि-आदि ग्राम की आवश्यकतानुसार, खाते की या ग्राम समाज की भूमि सुरक्षित की जाती है। यह एक ऐसा कार्य है जिससे भूमि की उपलब्धता ग्राम के चौमुखी विकास के लिए उपलब्ध रहती है। अन्यथा जगजाहिर है कि भूमि उपलब्ध न होने के कारण मार्ग, चाहे वह मोटर मार्ग ही क्यों न होद्ध अवरू( पड़े रहते हैं। किसी भी सार्वजनिक कार्य के लिए सरकार पैसा तो दे रही है पर भूमि उपलब्ध नहीं होती है जिसके कारण ग्राम का विकास रुक जाता है।

इस कार्यवाही के दौरान ग्राम की हर आवश्यकता को देखते हुए भूमि सुरक्षित की जाती है और इसके एवज में प्रत्येक खातेदार से उसकी समस्त भूमि के मूल्यांकन से 3 से 5 प्रतिशत मूल्यांकन की भूमि ली जाती है। इस प्रकार सहायक चकबन्दी अधिकारी चकबन्दी समिति के परामर्श से उचित स्थानों पर उक्त प्रयोजनों हेतु भूमि सुरक्षित करता है।

#### 8. खतौनी की नकल का वितरण :

इसके उपरान्त प्रत्येक खातेदार व कब्जेदार को अब तक की गयी समस्त कार्यों के संबंध में तहसील से प्राप्त खतौनी की नकल, जिसमें खातेदार का खाता सं. खेतों का खतौनी में दर्ज समस्त खेतों का रकबा, रिसर्वे या चकबन्दी पड़ताल में पाया गया खेतों का क्षेत्रफल, कब्जे दार का नाम मय पूरे पते के, खेतों का विनिमय अनुपात ;खेत की दरद्व अंकित किया जाता है। इस हिसाब से खेत की कुल कीमत यालि यदि एक खेत आधा एकड़ का है और उसका विनिमय अनुपात 40 पैसे की दर से लगा है तो उस खेत की कुल कीमत 20 पैसे होगी। इस प्रकार विनिमय अनुपात के हिसाब से खाते के समस्त खेतों की कीमत निकाली जाती है। खाते में प्रत्येक खातेदार का कितना अंश है, किसी खेत में पेड़, कुंआ, या अन्य उन्नति का साधन है, तो उसका प्रतिकर तथा उसमें किस खातेदार का कितना अंश है भी अंकित किया जाता है। यदि उस खाते का कोई क्षेत्रफल सार्वजनिक प्रयोजनों के लिए सुरक्षित किया गया है तो उसका भी उल्लेख किया जाता है।

इसी प्रकार कब्जेदार को भी अलग से एक नकल जारी की जाती है जिसमें खेत या खेतों पर उसका कब्जा पड़ताल के समय बताया गया होता है उक्त सभी विवरणों के साथ वितरित किया जाता है। इन उ(हरणों के साथ एक नोटिस भी उस आशय का वितरित किया जाता है कि, यदि उक्त किसी भी इन्द्राज के संबंध में किसी व्यक्ति को कोई आपत्ति हो, तो वह अपनी आपत्ति लिखित रूप से साधारण कागज पर बिना कोर्ट फीस का टिकट लगाए निर्धारित अवधि के अन्दर सहायक चकबन्दी अधिकारी के कार्यालय पर कर सकता है।

### 9. अशु(ियों एवं आपत्तियों का निस्तारण :

आपत्ति करने के लिए निर्धारित समय बीत जाने के उपरान्त समस्त विवादित या अशु(ि वाले खातों की कार्यालय प्रतिलिपि संबंधित लेखपाल सहायक चकबन्दी अधिकारी के पेशकार को उपलब्ध कराता है। पेशकार प्रत्येक विवादित खाते की प्रतिलिपि एवं कब्जेदार को दी गयी प्रतिलिपि के साथ उस खाते से संबंधित प्राप्त सभी आपत्तियों को संलग्न कर अलग अलग पत्रावलियां बनाकर उन्हें विधिवत मिसिल बन्द रजिस्टर में दर्ज करता है।

इसके उपरान्त विधिवत सूचना देकर सहायक चकबन्दी अधिकारी गांव में जाते हैं और प्रत्येक पत्रावली का समझौते के आधार पर निस्तारण करने का प्रयत्न करता है। यदि पक्ष समझौते के लिए सहमत हैं तो सहायक चकबन्दी अधिकारी अपने हाथ से समझौता लिखता है जिसे वह पक्षों एवं उपस्थिति चकबन्दी समिति एवं कृषकों के सम्मुख पढ़कर सुनाता है एवं इस समझौते पर पक्षों के हस्ताक्षर या निशानी अंगूठा एवं साक्षी के तौर पर दो चकबन्दी समिति के सदस्यों के हस्ताक्षर भी इस पर लेता है। इस समझौते के आधार पर सहायक चकबन्दी अधिकारी पत्रावली पर आदेश पारित कर देता है।

जो वाद सहायक चकबन्दी अधिकारी समझौते के आधार पर तय नहीं कर पाता है। इसके उपरान्त वह चकबन्दी खतौनी तैयार करता है। इस खतौनी में एक मुख्य बात यह होती है कि संयुक्त खातों में प्रत्येक खातेदार के क्या-क्या अंश हैं, आदेश के अनुसार दर्ज होते हैं अन्य बातें खतौनी के अनुसार ही दर्ज होती है। इस प्रकार चकबन्दी क्रियाओं के दौरान अभिलेख व नक्शे की दुरुस्ती का कार्य पूर्ण हो जाता है।

### 10. गाँवों में चकों का निर्माण करना :

विधिवत सूचना के उपरान्त सहायक चकबन्दी अधिकारी ग्राम के निर्धारित स्थान पर जाते हैं और वहाँ पर उपस्थित चकबन्दी समिति एवं अन्य कृषकों की उपस्थिति में चक निर्माण का कार्य नक्शे पर, अभिलेखों एवं उपस्थिति चकबन्दी समिति एवं कृषकों के सहयोग से करता है। सर्वप्रथम अगर किसी मुख्य मार्ग की आवश्यकता ग्राम में है तो वह उपस्थित लोगों के परामर्श से ग्राम की सुविधानुसार उसे नक्शे पर निकाला जाता है। इसके उपरान्त उनका मुख्य मार्गों को भी शजरे पर बनाया जाता है। इसके उपरान्त उनका मौके पर जाकर नजरी सीमांकन किया जाता है। ताकि यह पता चल सके कि जो मुख्य मार्ग निकाला गया है, वह मौके पर भी सही स्थिति में उपयोगी होगा या कोई अवरोध तो उस मार्ग में नहीं पड़ता है। यदि पड़ता है तो तदनुसार मौकानुसार उसमें संशोधन कर दिया जाता है।

### 11. पहाड़ में चक कैसे बने :

अब जहाँ तक चक निर्माण का संबंध है मैदानी व पहाड़ी क्षेत्रों में इसमें थोड़ा अन्तर है। बिखरे खेत को इकट्ठा करना ही चक बनाने का उद्देश्य होता है। फिर चाहे क्षेत्र मैदानी हो या पहाड़ी। मैदान में जहाँ चौकोर या आयताकार चक बनाये जाते हैं। लेकिन पहाड़ों में वहीं चौकोर या आयताकार चक नहीं बनाये जा सकते हैं। लेकिन चक तो बनाये जा सकते हैं। इसमें कोई कठिनाई भी नहीं है और पहाड़ों पर चाहिए भी नहीं। यह धारणा जो सामान्यतः हर व्यक्ति के दिमाग में आती है यह है कि किसी व्यक्ति के पास सिंचित भूमि भी है और,अच्छे किस्म की असिंचित भूमि भी है और खराब किस्म की भूमि भी है तो उसे चक कहाँ व कैसे दिया जायेगा?

एक बात यहाँ पर स्पष्ट करना भी उपयुक्त होगा कि 75 प्रतिशत कृषकों को एक चक 20 प्रतिशत कृषकों को दो चक और 5 प्रतिशत कृषकों को तीन चक तक दिये जा सकते हैं। चार चक देने का भी प्रावधान है। परन्तु उसके लिए उपसंचालक चकबन्दी की अनुमति होनी चाहिए। यह सब सब इसलिए है कि एक चक देने से उस कृषक के या अन्य कृषकों के हितों पर प्रतिकूल प्रभाव न पड़े। वैसे यदि संभव हो तो प्रयत्न किया जाता है कि प्रत्येक खतेदार को एक ही चक मिले। फिर भी अगर कृषक की विखरी भूमि का एक चक, अच्छी सिंचित भूमि का दूसरा चक और खराब बिखरी भूमि का तीसरा चक बनाया जाता है तो भी उसे लाभ ही है। सिंचित भूमि में सिंचाई के लिए नाली एवं सभी चकों पर पहुँचने के लिए चक मार्ग दिये जाते हैं जो आवश्यक हैं। यद्यपि पहाड़ी क्षेत्रों में चक मार्ग की चाड़ाई मैदानी क्षेत्रों की अपेक्षा काफी कम होगी, क्योंकि मैदानी क्षेत्रों में बैलगाड़ी, ट्रैक्टर आदि ले जाने के लिए समुचित चौड़ाई के चक मार्गों की आवश्यकता होती है। लेकिन यहां पर छोटे खेत होते हैं।

चक यथासंभव कृषक की अधिकतम जोत पर देने का प्रयत्न किया जाता है। आपसी समझौते से कृषक अपनी सुविधानुसार भी चक ले सकते हैं। यदि कतिपय कृषकों की भूमि दो गांव में है तो उसे चक दोनों गांवों की सीमा पर मिले हुए मिल सकते हैं। बशर्ते कि किसी अन्य के हितों की हानि न हो। इस प्रकार चक आपसी सूझबूझ और खेतों के स्वेच्छा से आदान प्रदान कर सहायक चकबन्दी अधिकारी बनाता है। विवादित मामलों में वह अपने विवेक से कार्य करता है।

जब समस्त गाँव के चक बन जाते हैं। तब प्रत्येक खातेदार ;चकदारद्व को उसकी मूल जोत के साथ प्रस्तावित चक के खेतों का रकबा मूल्यांकन सहित उदहरण वितरित किये जाते हैं। ग्राम प्रधान को भी ग्राम समाज की भूमि की ब्योरे का उदाहरण दिया जाता है।

इसके उपरान्त चकबन्दीकर्ता मौके पर चकों की पैमाइश करता है। यदि कोई चकदार अपनी किसी चक से असंतुष्ट है तो वह इसकी आपत्ति सहायक चकबन्दी अधिकारी या चकबन्दी अधिकारी के कार्यालय पर कर सकता है। चकबन्दी अधिकारी मौका मुआयना कर उसकी आपत्ति का निस्तारण करता है। यदि वह व्यक्ति या उसके चक के संशोधन से प्रभावित व्यक्ति को कोई आपत्ति है तो उसकी अपील वह बंदोबस्त अधिकारी से आदेश से असंतुष्ट व्यक्ति उप-संचालक चकबन्दी के समक्ष रिवीजन प्रस्तुत कर सकता है। और अन्त में बंदोबस्त अधिकारी चकबन्दी द्वारा चक अपीलों के निस्तारण के उपरान्त कृषकों को नये चकों पर कब्जा दिला दिया जाता है।

## 12. नये भू-अभिलेखों का बनाया जाना :

नये चको पर कब्जा दिलाये जाने के उपरान्त नये भू-अभिलेख बनाये जाते हैं। इसमें प्रत्येक चक में पुराने कितने ही खेत क्यों न हों सब का कुल रकबा सहित एक नया नम्बर दिया जाता है। तदनुसार उसका लगान भी अंकित किया जाता है। यदि किसी कृषक को दो तीन चक मिले हो तो तदनुसार उसमें खाते में दो तीन खेत की रकबे सहित अंकित होंगे। इसी प्रकार नक्शा भी नये नम्बर का बनाया जाता है। नये नम्बरों का खसरा, खतौनी व नक्शा तैयार होने के उपरान्त विभिन्न स्तरों पर उनकी जांच की जाती है और इसके उपरान्त नये खसरा खतौनी व नक्शा बनाकर तहसील को भेज दिये जाते हैं। इस प्रकार चकबन्दी क्रियायें उस ग्राम में समाप्त कर दी जाती हैं।

अतः उपरोक्त से स्पष्ट है कि उत्तराखण्ड के पहाड़ी क्षेत्रों में चकबन्दी उसी नियम व अधिनियम के अर्न्तगत की जा सकती है जो उत्तर प्रदेश में लागू है यद्यपि इसमें मामूली संशोधन की आवश्यकता पड़ेगी, मुख्य रूप से चकों का चौकोर या आयताकार बनाने जाने के सम्बन्ध में जो पहाड़ों पर संभव नहीं है। लेकिन बिखरे खेत तो इकट्ठा किये ही जा सकते हैं और यह उद्देश्य चकबन्दी का है।

# कुछ ज्वलन्त सवाल

## चकबन्दी की मांग :

भूमि सुधार की मांग सभी राज्यों में समय समय पर उठती रही है। उत्तर प्रदेश में भी जब टुकड़ों में बंटी जमीन पर काम करना कठिन हो गया तो राजनीतिक दलों ने इसे समझा व जाना। यही कारण रहा कि उ.प्र. में चकबन्दी की मांग का हर राजनीतिक दल ने समर्थन किया। सन् 1937 में जब उ.प्र. संयुक्त प्रान्त के एसेम्बली चुनाव हुये तो सभी राजनीतिक दलों ने अपने घोषणा पत्रों में चकबन्दी को शामिल किया।

राज्य में गोविन्द बल्लभ पन्त के नेतृत्व में सरकार बनी और प्रदेश में अनिवार्य चकबन्दी करने हेतु एक्ट बनाया गया। सन् 1952 में उ.प्र. सरकार ने पहली बार 'भूमि सुधार एवं जमींदारी उन्मूलन बिल' पास किया और कानून बनाया गया। लेकिन पर्वतीय क्षेत्रों को यह कहकर चकबन्दी से अलग रखा गया कि जब भी पर्वतीय क्षेत्रों में चकबन्दी आरम्भ होगी तो उसके लिये क्षेत्र के अनुकूल कानून बनाया जायेगा। लेकिन ऐसा न हुआ। गोविन्द बल्लभ पन्त बाद में देश के गृहमन्त्री बने और बाद राज्य में किसी भी मुख्यमन्त्री ने इस विषय को गम्भीरता से नहीं छुआ।

## चकबन्दी आन्दोलन :

जब भूमि सुधार की ओर सरकार की लम्बे समय तक ध्यान न दिया तो पहाड़ की जनता ने दिल्ली में सन् 1975 में चकबन्दी की मांग को उठाया। पहाड़ के लोगों की इस न्योचित मांग को देखते हुये सन् 1983 में अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी, दिल्ली के किसान सेल ने दो दिवसीय गोष्ठी में भी चकबन्दी की आवश्यकता पर जोर दिया था जिसमें विश्व ख्याति के वैज्ञानिकों ने भाग लिया था। तत्पश्चात् सन् 1988 में कोटद्वार में आयोजित सम्मेलन में जिला कांग्रेस कमेटी की ओर से प्रस्ताव पारित कर पर्वतीय गांवों में चकबन्दी लागू कराने की मांग की गई।

जल्द ही सन् 1989 में पौड़ी में मण्डल स्तर पर एक सम्मेलन आयोजित हुआ जिसमें आयुक्त, गढ़वाल मण्डल, जिलाधिकारी पौड़ी, विधायक पौड़ी पुष्करसिंह रौथाण, अध्यक्ष जिला पंचायत भारतसिंह रावत एवं अनेकों पंचायत प्रतिनिधियों आदि ने अपने विचार रखे और चकबन्दी लागू करने की पुरजोर मांग की। इस सम्मेलन के बाद अनेक जिला पंचायतों, क्षेत्र पंचायतों और ग्राम पंचायतों की ओर से चकबन्दी के समर्थन में सरकार को प्रस्ताव भेजे गये।

परिणामस्वरूप सन् 1989 में एन.डी. तिवारी के मुख्यमन्त्री काल में उ.प्र.सरकार ने पर्वतीय अंचल में चकबन्दी करवाने का निर्णय लिया। सन् 1990 में गढ़वाल मण्डल के पौड़ी जनपद एवं कुमायूं मण्डल के अल्मोड़ा जनपद में अलग-अलग चकबन्दी कार्यालय खोले गये। दुर्भाग्य से न तो चकबन्दी निर्णय पर अमल किया और न यहां के क्षेत्रीय कृषकों को जागरूक किया गया और न ही नियम कानून बनाये गये। फलस्वरूप तैनात अधिकारी व कर्मचारी बिना काम के वेतन लेते रहे।

6 साल बाद सन् 1996 में इन कार्यालयों को बन्द कर दिया गया। लेकिन बंजर खेती व पलायन रुकता न देखकर सरकार जागी और सन् 1997 में उ.प्र. सरकार ने पर्वतीय विकास विभाग के प्रमुख सचिव डॉ. आर.एस. टोलिया को चकबन्दी प्रारूप बनाने का दायित्व सौंपा। लेकिन इसका भी कोई परिणाम सामने नहीं आया। इस सम्बन्ध में सभी राजनीतिक लोगों ने कहा कि अब राज्य बनने वाला है तो राज्य बनने पर सबसे पहले पर्वतीय क्षेत्र में चकबन्दी व भूमि प्रबन्धन का काम किया जायेगा।

अन्ततोगत्वा 9 नवम्बर, 2000 को उत्तराखण्ड राज्य का गठन कर दिया गया। राज्य की पहली सरकार द्वारा सन् 2001 में चकबन्दी के समर्थन में एक प्रस्ताव पारित किया। इसके बाद मार्च 2002 में राज्य के मुख्यमन्त्री बनने पर एन.डी. तिवारी ने चकबन्दी करने का वचन दोहराया और राज्यपाल महामहिम सुरजीत सिंह बरनाला ने 15 अगस्त 2002 को अपने अभिभाषण में भी पर्वतीय क्षेत्र में चकबन्दी करने का उल्लेख किया।

मार्च 2003 में राजस्व मन्त्री डॉ. हरकसिंह रावत की अध्यक्षता में एक बैठक हुई जिसमें एक 'चकबन्दी परामर्श समिति' का गठन किया गया और जिसे एक माह के अन्दर चकबन्दी का प्रारूप तैयार कर सरकार के सम्मुख प्रस्तुत करने के लिये कहा गया। लेकिन इच्छा शक्ति के अभाव में उस समिति को कानूनी मान्यता नहीं दी गई और मामला जहां का तहां लटक गया।

फरवरी 2004 में पूरणसिंह डंगवाल की अध्यक्षता में भूमि सुधार परिषद का गठन किया गया। इस परिषद को चकबन्दी का प्रारूप बनाने का दायित्व सौंपा गया। इस परिषद ने पौड़ी जनपद के कलजीखाल ब्लॉक और अल्मोड़ा जिले के ताड़ीखेत ब्लॉक की एक-एक न्याय पंचायत का चयन कर वहां पर अनकों बैठकें की जहां से उनको अनेक प्रस्ताव दिये गये।

इसके बाद 2007 में मेजर जनरल बी.सी. खण्डूरी के नेतृत्व में बनी नई सरकार ने भी स्तैच्छिक चकबन्दी लागू कराने हेतु कृषि मन्त्री त्रिवेन्द्र सिंह रावत की अध्यक्षता में एक चकबन्दी परामर्श समिति

गठित की और उनको चकबन्दी का प्रारूप बनाने का दायित्व सौंपा गया। लेकिन यह समिति भी कोई प्रारूप न बना पाई और न ही चकबन्दी के लिये लोगों को तैयार कर पाई।

### **अभूतपूर्व निर्णय :**

लगातार हो रही मांग के फलस्वरूप मुख्यमंत्री विजय बहुगुणा ने 8 जून, 2012 को कैबिनेट की बैठक में उ.प्र. जमींदारी विनाश एवं भूमि सुधार अधिनियम 1950 में संशोधन किया ताकि बिखरे खेतों की एक जगह चकबन्दी हो सके। इसके बाद श्रीनगर गढ़वाल की समीक्षा बैठक में 26 नवम्बर, 2012 को पूरे प्रदेश में चकबन्दी लागू करने के निर्देश दिये। इस क्रम में 13 मई, 2013 को राजभवन में राज्यपाल, मुख्यमंत्री, कृषिमन्त्री आदि और उच्च अधिकारियों की मौजूदगी में एक बैठक हुई जिसमें कहा गया कि सरकार चकबन्दी करने को लेकर कानूनी रूप देने पर विचार कर रही है। कृषि मन्त्री डॉ.हरकसिंह रावत ने इसकी पुरजोर वकालत की।

इसी दिशा में सरकार ने 7 अगस्त, 2013 को निर्णय लिया है कि राज्य में अनिवार्य चकबन्दी लागू होगी और इसी शीतकालीन सत्र में सरकार चकबन्दी विधेयक लायेगी। लेकिन चुनावों के कारण यह मामला पीछे चला गया। अब नये मुख्यमंत्री हरीश रावत ने भी इसे लागू करने को लेकर प्रतिबन्धित जाहिर की। इस दिशा में नवीनतम घोषणा कृषि मन्त्री डॉ. हरकसिंह रावत की ओर से की गई है जिसके तहत उन्होंने 200 गांवों में चरणबद्ध तरीके से चकबन्दी को लागू करने की बात की है।

### **कुछ जटिल सवाल :**

किसी निर्णय का लाभ तभी मिलता है जब उसका क्रियान्वयन भी उसी भावना के अनुसार हो। चकबन्दी करने का निर्णय तो हो गया है किन्तु इससे आगे की राह को आसान बनाना भी आवश्यक है। चकबन्दी लागू करने से पहले दूसरे अनेक मसलों का निदान होना आवश्यक है। इसमें सबसे पहले विशेषज्ञों, मांगकर्ताओं, योजनाकारों को बैठकर चकबन्दी के विभिन्न पहलुओं पर विचार करना होगा। इन महत्वपूर्ण बिन्दुओं में जमीन सम्बन्धी कई बातें हैं। यह मसला इसलिये जटिल बना है क्योंकि पूर्व में रही सरकारों ने न भूमि सुधार किया और न बन्दोबस्त ही। करवाया। लिहाजा जमीन सम्बन्धी जटिलतायें पैदा होती चली गईं जिनमें कई बातें शामिल हैं—

- किसी व्यक्ति की जमीन की खाता-खतौनी और धरातल पर स्थिति में अन्तर
- स्थाई/आंशिक रूप से पलायन कर चुके परिवार की स्थिति
- मृतक/गैर दावेदार भूमि की स्थिति
- बिना बहीनामे/रजिस्ट्री के क्रय-विक्रय करने वाले लोगों की स्थिति
- आपस में संटवारा बंटवारा व गोल खाते की समस्या।
- एक परिवार की जमीन कई गांवों में होना
- भूमिहीन परिवारों की समस्या

### **क्रियान्वयन के लिये कुछ सुझाव :**

चकबन्दी लागू करने में पहाड़ के लिये चकबन्दी का प्रारूप बनाया जाना है जहां पर मैदानी प्रारूप के अनुसार चकबन्दी नहीं की जा सकती है। प्रारूप बनाने के लिये राज्य सरकार को सबसे पहले मिल बैठ कर पहाड़ में चकबन्दी के लिये एक अलग प्रारूप तैयार करना होगा।

### **प्रारूप तैयार करने से पूर्व अध्ययन के प्रमुख बिन्दु :**

- पर्वतीय क्षेत्र में चकबन्दी लागू करने से पहले उत्तर प्रदेश के चकबन्दी अधिनियमों का अध्ययन।
- हिमाचल व दूसरे राज्यों की चकबन्दी का संक्षेप में अध्ययन
- सन् 1972 में देहरादून के समीप सलान गांव में 1972 में की गई चकबन्दी का अध्ययन।
- उत्तरकाशी के स्वैच्छिक चकबन्दी वाले बीफ व खरसाली गांवों का अध्ययन।
- अब तक के प्रयासों विश्लेषण हो व नये सुझावों का समावेश

**पर्वतीय क्षेत्र में चकबन्दी के लिये बनने वाले प्रारूप में निम्न प्रमुख बातों समावेश हो :**

- प्रारूप में पर्वतीय क्षेत्र में चकबन्दी की परिभाषा, प्रक्रिया, उद्देश्य का स्पष्ट उल्लेख हों।
- चकबन्दी की लाभप्रदता का भी प्रारूप में उल्लेख हो।
- उ.प्र. एवं हिमाचल के चकबन्दी पैटर्न की प्रमुख व व्यावहारिक बातों का इसमें समावेश हो।
- चकबन्दी प्रारूप राज्य के पर्वतीय भौगोलिक, सामाजिक व आर्थिक व सांस्कृतिक पृष्ठभूमि पर आधार को ध्यान में रखते हुये बनाया जाये।
- प्रारूप बनाने के में अनुभवी एव विशेषज्ञों जो पहाड़ की भूमि की जानकारी रखते हों उनका सहयोग लिया जाये।
- प्रारूप में राजनीतिक दलों, पर्वतीय क्षेत्र के जानकार लोगों, किसानों, कृषि कार्य में जुटी महिलाओं के प्रतिनिधियों, सामाजिक संगठनों, संस्थानों, चकबन्दी कार्यकर्ताओं, पंचायत प्रतिनिधियों के सुझाव लिये जायें।
- प्रारूप में गांव के विकास के सारे तत्वों का समावेश हो और चकबन्दी के साथ साथ गांव के विकास का एक मास्टर प्लान भी हों।
- चकबन्दी को लागू करने के लिये स्वतन्त्र कार्यदायी संस्था मसलन स्वैच्छिक संस्थाओं या ग्राम पंचायतों का कैसे सहयोग मिले इसका उल्लेख हो।
- चकबन्दी अपनाने वाले किसानों को चल रही सरकारी योजनाओं से कैसे जोड़ा जाये व कैसे उनको प्राथमिकता मिले प्रारूप में उल्लेख हो।
- प्रारूप के बनने के बाद इसे जनता के सामने रखा जाये। इसका व्यापक व्यापक प्रचार-प्रसार हो जिसमें मिले सुझावों का इसमें समावेश हो सके।
- प्रारूप के उपरान्त चकबन्दी के लिये नियम व उपनियम बनाने के लिये तकनीकी समिति की भूमिका पर भी सुझाव लिये जायें। आपत्तियों के निस्तारण के लिये समय मिले।
- चकबन्दी को लागू करने के लिये सदन में बहस हो व अध्यादेश लाया जाये।
- इसके बाद चकबन्दी मैनुअल ;मार्गदर्शिकाद्ध तैयार हो।

### चर्चा के दूसरे प्रमुख बिन्दु :

- चकबन्दी के सफल निरूपण के लिये जनता से भी सुझाव लिये जायें इस हेतु एक कमेटी गठित की जाय जिसमें चकबन्दी मांग कर्ता, एवं चकबन्दी विशेषज्ञ मोटे तौर पर चकबन्दी कैसे शुरू की जाय इसके लिये सुझाव देगें।
- समिति सम्बन्धित विभाग को अपने सुझाव देगी। विभाग इस पर विचार विमर्श कर सुधार के लिये कमेटी को सुझाव देगा।
- पर्वतीय ग्रामों में चकबन्दी विभाग का निदेशालय पहाड़ में बने।
- स्टाफ की टनिंग पर सुझाव लिये जायें।
- कमेटी की संस्तुतियां शासन स्तर पर जाये।
- गांवों में प्रचार-प्रसार एवं पंचायत स्तर पर चकबन्दी की बात रखी जाये। तदोपरान्त ब्लॉक स्तर पर भ्रातियां और शंकाओं के समाधान के लिये गोष्ठियाँ आयोजित हों।
- अधिकारियों एवं कर्मचारियों की एक मोबाइल टीम भी गठित हो।
- उन गांवों में चकबन्दी शुरू हो जहां से प्रस्ताव सामने आ रहे हों।

आवश्यक है कि इसके लिये पहाड़ के हालातों से परिचित विशेषज्ञों को बैठ कर आधार तय करें। इसके लिये कुछ बिन्दुओं पर गहन विचार की आवश्यकता है। परन्तु योजना को जमीन पर लाने के लिये सरकार की मंशा व प्रबल इच्छा शक्ति होना भी जरूरी है। चकबन्दी को लागू करने के लिये भी स्वतन्त्र कार्यदायी संस्था मसलन स्वैच्छिक संस्थाओं या ग्राम पंचायतों का सहयोग लेना उपयुक्त होगा। इसी तरह से चकबन्दी अपनाने वाले किसानों को विशेष आर्थिक प्रोत्साहन देने की भी आवश्यकता होगी जिससे सरकार की विश्वसनीयता में वृद्धि होगी।

## उत्तराखण्ड में भूमि बन्दोवस्त संक्षेप में :

ब्रिटिश सरकार के आने से पहले जमीन का कोई दस्तावेजी रिकार्ड नहीं हुआ करता था। किसके पास कितनी जमीन है यह जाने के लिये अंग्रेज शासकों ने अपने शासनकाल में पहल की और भूमि बन्दोवस्त की पहल की। ताकि हर परिवार की जमीन का विवरण का पता चल सके और रिकार्ड में दर्ज हो सके।

सबसे अहम बात ये रही कि उन्होंने यहां के ग्रामीण समाज में मौजूद सामंती भूमि संबंधों में कोई छड़छाड़ किये बिना ही बन्दोवस्त किये।

इस सिलसिले में प्रथम भूमि बन्दोवस्त की शुरुआत अंग्रेज शासक ई. गार्डनर ने निर्देशन में 1815-16 में हुई। इसके बाद कमिश्नर ट्रेल ने 1817 में दूसरा, 1818 में तीसरा और 1820 में चौथा भूमि बन्दोवस्त कराया था। सन् 1823 म पांचवा भूमि बन्दोवस्त हुआ जिसे अस्सी साला बन्दोवस्त के नाम से जाना जाता है। आज भी दो गांवों में सीमा सम्बन्धी विवाद होने पर अस्सी साला बन्दोवस्त से मदद ली जाती है।

1829 में छटवां भूमि बन्दोवस्त हुआ 1830-31 में प्राकृतिक आपदा से हुये भूकटाव के कारण एक बार जनता की मांग पर कमिश्नर ट्रेल द्वारा सातवां भूमि बन्दोवस्त किया। कमिश्नर बेटन ने सन 1842 एवं 1846 के बीच नवां बन्दोवस्त कराया इस बन्दोवस्त में आसामीवाद फांट बनी और हिस्सेदारों और खायकारों के हिस्से निर्धारित किये गये। इस बन्दोवस्त को चकनामों के नाम से भी जाना जाता है।

कुमाऊ का पहला वैज्ञानिक भूमि बन्दोवस्त सन 1863 से 1873 के बीच बेकट द्वारा दसवां बन्दोवस्त किया गया। इस बन्दोवस्त द्वारा प्रत्येक गाँव के नक्शे, खसरे पचे बनाये गये जमीन को तलाऊ, अब्बल, दोयम, इजरान व कटील जैसी श्रेणियों में बांटा गया। इसके अलावा ऐसी भूमि को भी नपवाया जो खेती किसानों के काम आ सकती थी। इस भूमि को बेपढ़त भूमि कहा गया। यह बैकट बन्दोवस्त के नाम से प्रसिद्ध हुआ।

ग्यारहवां भूमि बन्दोवस्त कमिश्नर गूज ने 1899-1902 के बीच कराया। आजादी के बाद जमींदारी उन्मूलन कानून बना और इसके साथ ही नया भूमि बन्दोवस्त शुरू हुआ। गढ़वाल के जिलाधिकारी ईबटसन के द्वारा 1934 में बन्दोवस्त करवाया गया। टिहरी रियासत में भी ब्रिटिश व्यवस्था की तर्ज पर बन्दोवस्त हुये। आजादी के बाद 1958 से 1964 के बीच भूमि बन्दोवस्त हुआ किन्तु यह पुराने बन्दोवस्त की नकल से अधिक कुछ नहीं रहे क्यों कि इनमें मूलभूत परिवर्तन नहीं किये गये। हालांकि इनमें पक्के खायकारों-सिरतानों को भूमि अधिकार दिये गये और मालगुजार, थोकदार, पदान जैसी पुरानी व्यवस्थाओं को खत्म कर दिया गया। लेकिन इस बन्दोवस्त में भी पहाड़ में प्रचलित गाल खाता व्यवस्था को समाप्त नहीं किया गया।

आज भी पहाड़ में प्रत्येक खातेदार अपनी भूमि का स्वतंत्र खातेदार न होकर संयुक्त रूप से हिस्सेदार है। इसके अलावा किसानों और ग्रामीणों द्वारा चारे, चरगाह, पनघट, ईंधन और लघु वन उत्पाद के लिये इस्तेमाल की जा रही सारी जमीनों को राज्य सरकार के अधीन कर दिया गया। इस समय अगले भूमि बन्दोवस्त की सीमा 40 वर्षों के लिये तय की गयी जो कि वर्ष 2004 से शुरू होनी थी किंतु अब इस पर निर्णय हुआ है लेकिन चकबन्दी बन्दोवस्त से अधिक महत्वपूर्ण है।

## बन्दोवस्त बनाम चकबन्दी :

पूर्व बन्दोवस्त अधिकारी कुंवरसिंह भण्डारी भूमि बन्दोवस्त एवं चकबन्दी में कृषकों के लिये क्या-क्या अधिक हितकर है पर अपनी राय देते हुये बताते हैं कि “हमें यह जानकारी होना आवश्यक है कि उक्त दोनों प्रक्रियाओं में सामान्य तौर पर क्या-क्या होता है। अतः दोनों क्रियाओं के अंतर्गत क्या-क्या बातें समान रूप से होती हैं, पहले उन बातों पर नजर डाली जाये” –

1. भूमि की नापतोल-दोनों में की जाती है।
2. शजरे ;नक्शे की दुरस्ती-दोनों में होती है।
3. सामान्य वादो एवं विवादों का निस्तारण-दोनों में किया जाता है जैसे- मृतक का वयनामों का दाखिल खारिज।
4. नये भू-अभिलेख व शजरा दोनों में बनता है।
5. इसके अतिरिक्त अन्य भू-अभिलेख व शजरे में दुरस्ती के जो काम भूमिबन्दोवस्त में किये जाते हैं, चकबन्दी में भी किये जाते हैं।

## कैसे लाभकारी है चकबन्दी बन्दोवस्त से :

उक्त समान कार्यों के अतिरिक्त चकबन्दी प्रक्रियाओं के अंतर्गत अन्य मुख्य महत्वपूर्ण कार्य और भी किये जाते हैं जो भूमि-बन्दोवस्त के अंतर्गत नहीं किये जा सकते हैं –

1. चकबन्दी में समस्त कार्य गांव के कृषकों द्वारा चयनित चकबन्दी समिति के परामर्श से सहायक चकबन्दी अधिकारी करते हैं।
2. चकबन्दी एक नियोजित समयबद्ध कार्यक्रम होता है।
3. चकबन्दी में भूमि संबंधी समस्त त्रुटियों, अशुभियों एवं विवादों का निस्तारण अंतिम रूप से किया जाता है। एक मुख्य बात यह है कि जब किसी गांव में चकबन्दी क्रियायें प्रारम्भ हो जाती हैं, तो भूमि संबंधित कोई भी वाद किसी भी न्यायालय यहां तक कि अगर वह वाद हाईकोर्ट में भी क्यों न चल रहा हो स्थगित हो जाता है। पुनः वह वाद चकबन्दी अदालत में चलाया जा सकता है जिसका अंतिम निर्णय चकबन्दी में किया जाता है जो अन्य न्यायालयों को भी मान्य होता है।

4. कोई भी भूमि संबंधी विवाद यदि वह चकबंदी के दौरान नहीं उठाया गया तो भविष्य में वह नहीं उठाया जा सकता है। स्पष्ट है कि चकबंदी के बाद कोई भी वाद-विवाद शेष नहीं रह जाता है।
5. हर खातेदार के नाम पृथक से एक ही समस्त ग्राम में खाता रहेगा। भले ही पहले उसके नाम एक से अधिक खातों में दर्ज रहा हो, उसका अंश हर खाते से पृथक कर एक ही खाता बनाया जाता है। यह इसलिये किया जाता है कि चकबंदी खाते का बंटवारा अन्यथा अनिवार्य है ताकि एक व्यक्ति के नाम एक ही चक बने।
6. चकबंदी क्रियाओं के अतिरिक्त एक अति महत्वपूर्ण कार्य ग्राम नियोजन का भी किया जाता है। इसमें ग्राम की आवश्यकतानुसार सार्वजनिक प्रयोजनों के लिये भूमि सुरक्षित की जाती है ताकि वर्तमान और भविष्य में भूमि उपलब्ध न होने के कारण गांव का विकास बाधित न हो। उदाहरण के लिये आबादी विस्तार हेतु अनुसूचित जाति की आबादी, खाद के गड्डे, प्राइमरी या उससे उच्चतर विद्यालयों, क्रीडास्थल, पंचायत घर, रास्ते, सिंचित क्षेत्रों में गूल, औषधालय आदि के लिये भूमि सुरक्षित की जाती है।

स्पष्ट है कि भूमि बंदोबस्त से हर सूरत में चकबंदी अधिक लाभदायक है। यहां पर एक अहम बात बताना भी आवश्यक है कि उत्तर प्रदेश सरकार न 20-30 वर्ष पहले ही यह निर्णय ले लिया था कि प्रदेश में भूमि-बंदोबस्त न कर हर 20 वर्षों के बाद पुनः चकबंदी की जाये और आज उत्तर प्रदेश में कहीं-कहीं चकबन्दी का तीसरा चक्र चल रहा है।

### स्वैच्छिक चकबंदी के पंच-

पूर्व बन्दोबस्त अधिकारी व पहाड़ों पर चकबन्दी के सबसे बड़े पक्षकार कुंवरसिंह भण्डारी की इस पर राय एकदम व्यवहारिक है। उनके मुताबिक उत्तराखण्ड सरकार प्रारम्भ से ही बड़ी दुविधा में रही है क्योंकि नारायण दत्त तिवारी के मुख्यमंत्रीत्व काल में पहले चकबन्दी की बात हुई लेकिन बाद में विचार बदल गया। स्वैच्छिक चकबंदी पर कार्य करने की योजना बनी और भूमि सुधार परिषद का गठन कर पूरनसिंह डंगवाल उसके अध्यक्ष बनाये गये पर प्रगति शून्य रही। इनके बाद की सरकारों ने कभी चकबंदी ;सामान्यतया तो कभी स्वैच्छिक और कभी भूमि बंदोबस्त कराने की बात की पर इसमें भी प्रगति शून्य ही रही। वर्तमान सरकार में कृषि मंत्री ने ऐलान किया है कि स्वैच्छिक चकबंदी करने वाले गांव को एक करोड़ रुपया सरकार देगी। इस घोषणा को भी लगभग 6-7 माह हो गये हैं, पर अभी तक एक भी गांव सामने आगे नहीं आया है। क्यों? इस पर भी विचार करना आवश्यक है।

अलग-अलग समय पर वर्षों से अलग-अलग बातें हो रही हैं ? स्पष्ट है कि न तो शासन और न प्रशासन स्वयं यह समझ पा रहा है कि किया क्या जाना चाहिए और कैसे? यह बात स्पष्ट तौर पर मुख्यसचिव सुभाष कुमार जो कि जब गढ़वाल मंडल के आयुक्त थे ने दैनिक जागरण 19-06-2004 के अनुसार कहा कि "तमाम गोष्ठियों और चर्चाओं के बाद यह निर्विवाद हो गया है कि चकबंदी होनी चाहिए, लेकिन हो कैसे, समाधान किसी के पास नहीं है।"

स्पष्ट है कि पहाड़ों पर चकबन्दी कैसे की जाये इसका समाधान नहीं मिल रहा है। समाधान निकाला जा सकता है, यदि शासन-प्रशासन चकबंदों के जानकार सेवानिवृत्त अधिकारियों व कर्मचारियों, चकबन्दी कार्यकर्ताओं एवं किसानों से परामर्श कर उनको भी अपने विचारों को रखने का अवसर दे।

स्वैच्छिक चकबंदी उत्तरकाशी जनपद के ग्राम वीफ व खरसाली में की गई है। हम सभी जानते हैं कि उक्त दोनों ग्रामों के अतिरिक्त अन्य किसी भी ग्राम में कृषकों द्वारा स्वैच्छिक चकबंदी नहीं की गई है। फिर भी शासन स्वैच्छिक चकबंदी की ही बात कर रहा है। क्यों स्वैच्छिक चकबंदी नहीं हो रही है इसके मूल कारण को जानना भी आवश्यक है। स्वैच्छिक चकबंदी का जो अर्थ सामान्यतया निकाला जा रहा है कि या समझा जा रहा है, यह है कि खातेदार आपसी सहमति से खेतों का संतवारा कर चक बनाये। बात बड़ी सहज लगती है पर धरातल की स्थिति यह है कि अगर दो, तीन भाईयों के पास दो, तीन या तीन से अधिक स्थानों पर भूमि है ,जो अधिकांशतया हैन्दू तो प्रक्रिया यह है कि उनम बंटवारे की स्थिति में हर खेत के उतने ही टुकड़े किये जाते हैं, जितनों में बंटवारा होना है। ऐसी स्थिति में कैसे स्वैच्छिक चकबंदी हो सकती है। इस मानसिकता के कारण यह संभव नहीं हो पा रहा है।

अगर आज से 20-30 साल पहले स्व. राजेन्द्र सिंह रावत के विशेष प्रयासों से ग्राम वीफ व खरसाली गांवों में स्वैच्छिक चकबंदी हुई है तो उक्त ग्रामों के अतिरिक्त अन्य ग्रामों के कृषकों ने क्यों स्वैच्छिक चकबंदी नहीं अपनाई? अब जब कि उत्तराखण्ड सरकार ने स्वैच्छिक चकबंदी करने वाले ग्रामों को एक करोड़ रुपये तक देने की घोषणा की है लेकिन काफी समय बीत जाने के उपरांत भी ग्राम सभायें इस दिशा में आगे नहीं आ रही हैं।

चाहे वह सामान्य चकबंदी हो या स्वैच्छिक चकबंदी इनका एक प्रारूप तैयार किया जाना चाहिए और भूमि संबंधी विशेषज्ञों के परामर्श से उसमें उचित संशोधन कर उसे एक अधिनियम के पारित कर तदनुसार नियमावली तैयार की जानी चाहिए। बिना अधिनियम बनाये न तो सामान्य चकबंदी और न स्वैच्छिक चकबंदी करना उचित है, क्योंकि बिना कानून बनाये यदि चकबंदी या स्वैच्छिक चकबंदी की जाती है तो उसमें वर्तमान भूमि संबंधी कानून आड़े आयेंगे। मुख्यरूप से जमींदारी विनाश एवं भूमि व्यवस्था अधिनियम और ऐसी चकबंदी किसी भी सक्षम न्यायालय में टिक नहीं पायेगी।

जिलाधिकारियों को मात्र यह कहने से काम नहीं चलेगा कि वह हर ब्लाक में दो-दो गांव स्वैच्छिक चकबंदी के लिये तैयार करें। आखिर किस अधिनियम के अंतर्गत वह स्वैच्छिक चकबंदी करा सकते हैं। मात्र जी.ओ. से काम नहीं चलेगा क्योंकि जी.ओ. जमींदारी उन्मूलन एवं भूमि व्यवस्था अधिनियम या अन्य भूमि संबंधित अधिनियमों में दी गई व्यवस्थाओं को नजरन्दाज नहीं किया जा सकता है।

स्वैच्छिक चकबंदी के अनुसार उ.प्र. जोत चकबंदी अधिनियम व नियमों में स्वैच्छिक चकबंदी का समुचित प्रावधान किया गया है। इसके अंतर्गत उ.प्र. में हजारों गांवों में स्वैच्छिक चकबंदी की जा चुकी है और की जा रही है। यह स्वैच्छिक चकबंदी क्या है? इरअसल में हमारे भू-अभिलेख व शजरे में कई प्रकार की अशु(ियां व त्रुटियां हैं। गांव में कब्जे भी अन्य की भूमि पर है। वयनामें आदि भी हुये हैं, कहीं कहीं भूमि के विवाद भी न्यायालयों में चल रहे हैं। भूमि नई आबाद भी की गई है। बंटवारे भी मौके पर नहीं

हुये हैं आदि-आदि। ऐसे में इन बातों का बिना निस्तारण किये स्वैच्छिक चकबंदी करना असंभव है। स्पष्ट है कि इन बातों का निस्तारण विधि-विधान से करने पर ही स्वैच्छिक चकबंदी हो सकती है। भू अभिलेखों में या शजरे में आप किसी भी परिवर्तन को आपसी सहमति से नहीं कर सकते हैं यह कानूनन मान्य नहीं होगा। इसके लिये अधिनियम में नियुक्त अधिकारी ही आदेश पारित कर सकता है। स्पष्ट है कि मात्र खेतों के आपसी संटवारे से ही चक नहीं बन पायेंगे। इसके लिये भू अभिलेखों व शजरे में विधिनुसार ही आदेश पारित करने होंगे।

उक्त सभी बातों का उ.प्र. जोत चकबंदी अधिनियम में व्यवस्था दी गई है। जब उक्त बातों का निस्तारण विधि विधान से हो जाता है तब सहायक चकबंदी अधिकारी गांव में चकबंदी समिति व अन्य कास्तकारों से विचार विमर्श कर सबसे पहले यहां प्रस्ताव रखता है कि आप अब शु( अभिलेखों के अनुसार आपसी रजामंदी से चक निर्माण करें, उसमें हिसाब-किताब करने में चकबंदी स्टाफ उनकी मदद करता है और इस प्रकार विधि-विधान से स्वैच्छिक चकबंदी उन ग्रामों में की जाती है।

पहले इस संबंध में कोई अधिनियम बनाया जाना चाहिये। उ.प्र. जोत चकबंदी अधिनियम एक उत्तम व्यवस्था प्रदान करता है और इस संबंध में जानकार लोगों का कहना है कि यूपों के इस अधिनियम से अच्छा अधिनियम अन्य किसी प्रान्त में नहीं है। हां हमें अगर अपना अधिनियम बनाना है तो उ.प्र. के अतिरिक्त अन्य प्रदेशों मुख्य रूप से हिमाचल प्रदेश के अधिनियम में जो बाते हमारे पहाड़ी क्षेत्र के लिये उपयुक्त है हमें लेनी चाहिए।

उत्तरकाशी के बीफ व खरसाली स्वैच्छिक चकबंदी के ग्रामों का भू-अभिलेखों में समावेश अब तक नहीं हो पाया है कारण बिना अधिनियम के अंतर्गत यह कार्य किया गया था। अगर बिना अधिनियम बनाये स्वैच्छिक चकबंदी की जाती है तो कैसे भू अभिलेखों में उसका समावेश किया जायेगा कहा नहीं जा सकता है। इसके अतिरिक्त अगर आज भी कोई उक्त गांवों का व्यक्ति उस स्वैच्छिक चकबंदी के विरु( यदि किसी सक्षम न्यायालय में वाद दायर करता है तो बिना किसी तर्क-वितर्क के वह स्वैच्छिक चकबंदी अमान्य हो जायेगी क्योंकि वह किसी अधिनियम नियमों के अंतर्गत नहीं की गई है।

इसके उलट उ.प्र. जोत चकबंदी अधिनियम के अंतर्गत जनपद देहरादून के 'सलाण गांव' में 1972 में पूर्ण रूप से पहाड़ी सीढ़ीनुमा खेतों में सफलता से चकबंदी सफलता की गई थी। परंतु दुर्भाग्य यह रहा है कि इस गांव का अभी तक भी शासन प्रशासन ने संज्ञान नहीं लिया है। अगर लिया होता तो जिस गांव में चकबंदी 1973 में पूर्ण हो गई थी तब से उ.प्र. जोत चकबंदी अधिनियम के ही अंतर्गत राज्य के सारे पहाड़ी प्रदेश के हजारों गांवों की चकबंदी हो गई होती।

### **स्टाफ के प्रशिक्षण में सावधानी :**

चूंकि सरकार चकबंदी पर आगे बढ़ रही है और चकबंदी स्टाफ की तैनाती होने वाली है इसलिये यहां पर तैनात किये जाने वाले अधिकारियों व कर्मचारियों के संबंध में संभल कर कदम रखना होगा। पहाड़ों पर चकबंदी कार्य करना इतना आसान काम नहीं जब तक कि वह व्यक्ति यहां की भौगोलिक संरचना व परिवेश से परिचित न हो।

उ.प्र. के चकबंदी कमिश्नर श्री आर्य जी का एक दृष्टान्त यहां पर याद आता है जो एक बार कहीं दूर पर जा रहे थे। जून की तपती गरमी थी उन्होंने देखा कि कुछ 2-4 व्यक्ति तपती गरमी में खेतों में घूम रहे हैं, उन्होंने गाड़ी रुकवाई और पास जा रहे एक देहाती व्यक्ति से पूछा भाई ये कौन हैं जो इस तपती दोपहरी में खेतों में घूम रहे हैं? उस व्यक्ति का जबाब था 'साहब यह या तो कोई पागल हैं या फिर चकबंदी करने वाले हैं।' कहने का मतलब यह है कि पहाड़ों पर कर्मठ स्वस्थ नौजवान ही लेखपाल, चकबंदीकर्ता या सहायक चकबंदी अधिकारी नियुक्त किये जाने चाहिए न कि वह स्टाफ जो इस समय उत्तराखण्ड के मैदानी क्षेत्र में कार्य कर रहा है। मैदानी क्षेत्र में कार्य करने वाला चकबंदी का स्टाफ पहाड़ों पर कतई सफल नहीं होगा और न वह आना ही चाहेगा। इसके लिये अलग से कैंडर बनाया जाना चाहिए और उन्हें समुचित सघन प्रशिक्षण दिया जाना चाहिए। क्योंकि किसी कार्य की सफलता उस कार्य को करने वालों पर अधिक निर्भर करती है।

### **प्रचार-प्रसार की महत्वपूर्ण भूमिका :**

पर्वतीय क्षेत्र में चकबंदी करने से पूर्व चकबंदी कैसे की जायेगी उसमें कृषकों को कैसे अपने हितों का ध्यान रखना चाहिए का प्रचार-प्रसार वृहद रूप से किया जाना चाहिए। जब चकबंदी हो जाती है तब किसान की समझ में वास्तविक रूप से आता है कि चकबंदी क्या है और उसमें कहां पर चूक हुई है। यह बात तब पता चलती है जब आप चकबंदी हुये गांव में जाये और कृषकों से बात करें।

अतः प्रचार-प्रसार, गोष्ठियों का वृहद रूप से पहले होना कृषकों के हित में होता है। स्वैच्छिक चकबंदी नहीं सामान्य चकबंदी हो जो गांव स्वेच्छा से चक बनाना चाहे। चकबंदी हर दशा में प्रदेश के कृषकों के लिये हित के लिये ही है। और यह सुगमता से उन गांवों में प्रारम्भ की जा सकती है जहां से 50 प्रतिशत से अधिक लोग इससे सहमत हो।

# चकबन्दी आन्दोलन

## एक नजर में

चकबन्दी आन्दोलन लगभग चार दशक पुराना आन्दोलन हैं जो विभिन्न चरणों से गुजरते हुये आज वहां तक आ चुका है जब सरकार चकबन्दी को लागू बात को मुखरता से करने लगी है।

इस आन्दोलन की शुरुआत 1975 में सबसे पहले दिल्ली में अखिल भारतीय गढ़वाली प्रगतिशील संगठन के अधीन हुई। विकास के इस मूलमन्त्र को कर्मयोगी गणेश 'गरीब' ने अपने जीवन का मिशन बनाया और वे इस पर प्रयोग करने को दिल्ली से अपने गांव सूला, पट्टी असवालस्यूँ पौडो गढ़वाल चले आये। यहां पर उन्होंने अपनी बंजर पड़ी 18 नाली भूमि को अव्वल दर्जे की भूमि के साथ संटवारा करके कड़ी मेहनत के बाद "चन्दन वाटिका" के नाम से आबाद कर लोगों के सम्मुख चकबन्दी का उदाहरण पेश किया।

खेती किसानों की नई संस्कृति को जन्म देने के लिए सरकार की भागीदारी आवश्यक थी जो उसे कानूनी जामा पहना सकती थी इसलिये गरीब जी इस जनजागरण में लग गये ताकि सरकार इस पर विचार कर सके। उन्होंने चकबन्दी करने के बावत 90 के दशक तक सामाजिक कार्यकर्ताओं, जनप्रतिनिधियों एवं शासन प्रशासन में बैठे लोगों का हजारों लोगों से सम्पर्क किया सैकड़ों पत्र भेजे, दसियों गांवों में पदयात्रायें, विचार गोष्ठियां और जनसंपर्क किया। विकास खण्ड, जिला एवं राज्य स्तर पर चकबन्दी कार्यकर्ताओं के सम्मेलन आयोजित किये। इस विचार के साथ अनेक बु(जीवी) जुड़े और इस आंदोलन में भागीदार बने।

लम्बे जनजागरण के बाद योजना आयोग की संस्तुति पर उत्तरप्रदेश सरकार ने 1989 में उत्तराखण्ड के पहाड़ी क्षेत्रों में प्रयोग के तौर पर चकबन्दी करने का निर्णय लिया। इसके तहत सन् 1990 में पौड़ी और अल्मोड़ा में चकबन्दी कार्यालय स्थापित किये गये लेकिन बिना किसी दृष्टिकोण के इसमें तैनात अधिकारियों एवं कर्मचारी छः वर्ष तक लोगों को चकबन्दी के प्रति जागरूक न कर सके न और न कोई योजना ही बना सके लिहाजा 1996 में दोनों चकबन्दी कार्यालय बन्द कर दिये गये।

1994 में जब पृथक राज्य आन्दोलन तेजी से उभरा तो क्षेत्रीय जनता की लगातार मांग को देखते हुए सभी राजनीतिक दलों ने यह विश्वास दिलाया कि राज्य बनने पर इस विषय पर प्राथमिकता के साथ अमल होगा। अन्त में सन् 2000 में राज्य गठन कर दिया गया। यद्यपि अन्तरिम सरकार के समय इस दिशा में कोई प्रगति नहीं हुई किन्तु वर्ष 2002 में प्रदेश में चयनित सरकार ने इस समस्या के समाधान हेतु राजस्व मंत्री की अध्यक्षता में भूमि सुधार एवं चकबन्दी पर उच्च स्तरीय समिति की स्थापना की। सन 2003 में राजस्व मंत्री की अध्यक्षता में एक परामर्श समिति का गठन किया गया ताकि व इस राज्य में भूमि सुधार करने के लिए कोई प्रारूप लागू करे सके लेकिन इस दिशा में कोई ठोस प्रगति न हो सकी। फरवरी 2004 में राज्य सरकार ने चकबन्दी एवं भूमि सुधार परिषद का गठन किया लेकिन प्रारूप बनाने की दिशा में परिषद कुछ खास नहीं नकर पाई।

सन् 2007 में हुये विधानसभा चुनावों के बाद बनी भाजपा सरकार के समय चकबन्दी परिषद की एक दो बैठकें हुई थी और कुछ समय भाजपा सरकार द्वारा स्वैच्छिक चकबन्दी करने की बात की गई लेकिन इस बारे में कोई प्रारूप सामने नहीं आ सका है। आज सारे ही राजनीतिक दल व वरिष्ठ राजनीतिज्ञ के चकबन्दी के विचार से सहमत हैं बावजूद इस मामले में कुछ धरातल पर कोई प्रगति नहीं हो सकी।

### नवीनतम स्थिति :

इस मांग के लगातार उठते रहने से सरकार 8 जून, 2012 को कैबिनेट की बैठक में उ.प्र. जमींदारी विनाश एवं भूमि सुधार अधिनियम 1950 में संशोधन लाई ताकि बिखरे खेतों की एक जगह चकबन्दी हो सके। इसके बाद श्रीनगर गढ़वाल की समीक्षा बैठक में 26 नवम्बर, 2012 को मुख्यमन्त्री द्वारा पूरे प्रदेश में चकबन्दी लागू करने के निर्देश दिये। 13 मई, 2013 को राजभवन में राज्यपाल, मुख्यमन्त्री, कृषि मन्त्री आदि और उच्च अधिकारियों की मौजूदगी में बैठक में कहा गया कि सरकार चकबन्दी को कानूनी रूप देने पर विचार कर रही है। इस दिशा में सरकार ने 7 अगस्त, 2013 को निर्णय लिया कि राज्य में अनिवार्य चकबन्दी लागू होगी और वह चकबन्दी विधेयक लायेगी। माह मार्च 2014 में नई सरकार सरकार ने आगे बढ़ते हुये राज्य के पर्वतीय कृषि एवं चकबन्दी के नाम से अलग निदेशालय बनाने का ऐलान किया।

### चकबन्दी की समर्पित संस्थायें :

- **अखिल भारतीय प्रगतिशील गढ़वाली संगठन**, सामुदायिक केन्द्र, लोदी कालोनी, नई दिल्ली में 1977 में गठन, संरक्षक— स्व. एच.एन. बहुगुणा, अध्यक्ष— पूर्णानन्द मधवाल, महामन्त्री— गणेश सिंह नेगी।
- **पर्वतीय विकास संगठन**, भेटी, कलजीखाल ;गढ़वाल में 01-01-1984 को गठन, संयोजक— भरोसालाल कोटियाल।
- **मजदूर कृषक संघ**, सरस्वती निवास, ग्राम— सूला, कलजीखाल, गढ़वाल में 23-11-1986 को गठन, संयोजक मण्डल— जयकृतसिंह असवाल, मनोहरलाल, भरोसालाल पारेश्वर नौड़ियाल एवं रामलाल निराला।
- **पर्वतीय विकास चकबन्दी समिति**, टूरिस्ट गेस्ट हाऊस पौड़ी में 05-02-1986 को गठन, संयोजक— गणेशसिंह 'गरीब', अध्यक्ष— पुष्करसिंह रौथाण ;विधायक, सचिव— रमेश पोखरियाल 'निशंक' ;संपादक, सह संयोजक — बु(बिल्लभ ड्युंडी एवं सुन्दरलाल बाबुलकर।
- **गरीब बेरोजगार संघ**, 01-08-1992 को मुण्डनेश्वर में गठन, संयोजक— जयकृतसिंह असवाल एवं 11 सदस्य।
- **चकबन्दी समिति**, 15-09-1996 को साकिनखेत ;कलजीखाल में गठन, संरक्षक— भानाराम, अध्यक्ष— विश्वम्भर सिंह नेगी।
- **चकबन्दी विकास समिति**, सन् 1997 को हरेन्द्र सिंह रावत ,पूर्व चकबन्दी अधिकारी के निवास पर कोटद्वार में गठन, संयोजक— जगदीश प्रसाद काला ;सेवानिवृत्त चकबन्दी अधिकारी।
- **चकबन्दी परामर्श समिति**, 07-03-2000 को अधिवक्ता संघ कार्यालय तहसील कोटद्वार में गठन, संयोजक— अरुण भट्ट, सदस्य जगमोहन सिंह नेगी, पीताम्बरदत्त देवरानी, कुंवर सिंह नेगी 'कर्मठ', जगदीश प्रसाद काला।
- **मूल नागरिक किसान मंच**, 14-10- 2001 को स्थान कलजीखाल में गठन, अध्यक्ष— सुरेन्द्र सिंह नेगी ;पूर्व प्रमुख, उपाध्यक्ष— जगदीशसिंह बिष्ट ;प्रमुख कलजीखाल, सलाहकार— गणेश सिंह 'गरीब'।
- **चकबन्दी संघर्ष समिति**, 03-03-2003 को महानन्द मार्केट कोटद्वार में गठन, अध्यक्ष— डॉ. सत्यप्रसाद बडोला पूर्व प्राचार्य, संयोजक— सत्य प्रकाश थपलियाल।

## कब क्या हुआ ?

- 1937 : उ.प्र. संयुक्त प्रान्त के एसेम्बली के चुनाव में सभी राजनीतिक दलों द्वारा अपने घोषणा-पत्रों में चकबन्दी का मुद्दा शामिल।
- 1939 : गोविन्द बल्लभ पन्त के नेतृत्व में बनी सरकार द्वारा प्रदेश में अनिवार्य चकबन्दी करने हेतु एक्ट बनाया।
- 1952 : उ.प्र. सरकार ने पहली बार 'भूमि सुधार एवं जमींदारी उन्मूलन बिल' पास कर कानून बनाया।
- 1952 : पर्वतीय क्षेत्रों को यह कहकर चकबन्दी से अलग रखा गया कि जब भी पर्वतीय क्षेत्रों में चकबन्दी आरम्भ होगी तो उसके लिये क्षेत्र के अनुकूल कानून बनाया जायेगा।
- 1975: पहाड़ की जनता ने सन् 1975 में चकबन्दी की मांग उठानी शुरू की। 1983 : अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी, दिल्ली के किसान सेल ने दो दिवसीय गोष्ठी में चकबन्दी की आवश्यकता पर जोर। गढ़वाल मण्डल मुख्यालय पौड़ी में चकबन्दी सम्मेलन। इसमें आयुक्त, गढ़वाल मण्डल, जिलाधिकारी पौड़ी, विधायक पी.एस. रौथाण एवं अध्यक्ष जिला पंचायत भारतसिंह रावत एवं अनेकों पंचायत प्रतिनिधियों आदि ने अपने विचार रख कर चकबन्दी लागू करने की पुरजोर मांग की।
- 1989 : अनेकों जिला पंचायत, क्षेत्र पंचायत और ग्राम पंचायत की ओर से सरकार को प्रस्ताव भेजे गये।
- 1989 : उ0प्र0 के सी.एम. एन.डी. तिवारी के काल में उ.प्र. सरकार द्वारा पर्वतीय अंचल में चकबन्दी करवाने का निर्णय।
- 1990 : गढ़वाल मण्डल के पौड़ी जनपद एवं कुमायूं मण्डल के अल्मोड़ा जनपद में चकबन्दी कार्यालय खुले।
- 1996 : दृष्टिकोण के अभाव, प्रारूप एवं नियम कानून न होने तथा जागरुकता के अभाव में बात आगे नहीं बढ़ी इस लिये कार्यालय बन्द हुये।
- 1997 : उ0प्र0 सरकार ने पर्वतीय विकास विभाग के प्रमुख सचिव आर.एस. टोलिया को चकबन्दी प्रारूप बनाने का दायित्व सौंपा लेकिन इसका भी कोई परिणाम सामने नहीं आया।
- 2001 : राज्य की पहली सरकार द्वारा सन् 2001 में चकबन्दी के समर्थन में प्रस्ताव पारित।
- 2002 : मुख्यमन्त्री बनने पर एन.डी. तिवारी ने चकबन्दी करने का वचन दोहराया। राज्यपाल महामहिम सुरजीत सिंह बरनाला ने 15 अगस्त 2002 के अभिभाषण में पर्वतीय क्षेत्र में चकबन्दी करने का उल्लेख किया।

- 2003 : राजस्व मन्त्री डॉ. हरकसिंह रावत की अध्यक्षता में हुई बैठक में 'चकबन्दी परामर्श समिति' का गठन का निर्णय एवं 1 माह के अन्दर चकबन्दी का प्रारूप तैयार कर सरकार के सम्मुख प्रस्तुत करने को कहा। इच्छा शक्ति के अभाव में समिति को कानूनी मान्यता नहीं दी गई और मामला जहां का तहां लटका रहा।
- 2004 : पूरनसिंह डंगवाल की अध्यक्षता में भूमि सुधार परिषद का गठन किया गया। इस परिषद को चकबन्दी का प्रारूप बनाने का दायित्व सौंपा गया।
- 2004-05 : परिषद ने पौड़ी जनपद के कलजीखाल ब्लाक और अल्मोडा जिले के ताड़ीखेत ब्लाक की एक-एक एक न्याय पंचायत का चयन कर वहां पर अनेकों बैठकों की जहां से उनको अनेक प्रस्ताव मिले।
- 2009 : नई सरकार ने स्वैच्छिक चकबन्दी लागू कराने हेतु कृषि मन्त्री त्रिवेन्द्रसिंह रावत की अध्यक्षता में चकबन्दी परामर्श समिति बनाई गई और उनको भी चकबन्दी का प्रारूप बनने का दायित्व सौंपा गया। लेकिन यह समिति भी कोई प्रारूप न बना पाई और न ही इसके लिये लोगों को तैयार कर पाई।

- [Symbolic text block 1]
- [Symbolic text block 2]
- [Symbolic text block 3]
- [Symbolic text block 4]
- [Symbolic text block 5]
- [Symbolic text block 6]



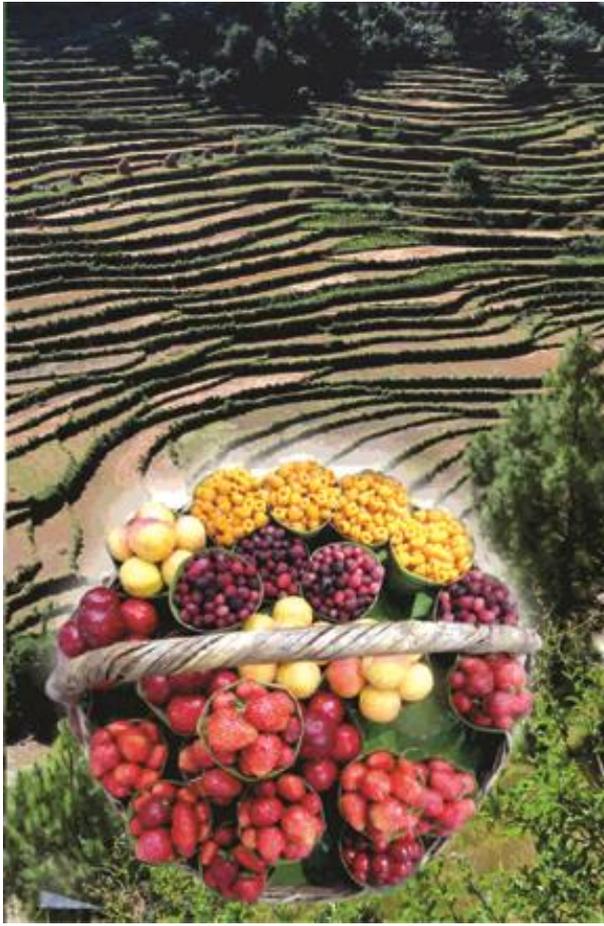
मिश्रा, देवेन्द्र रावत, अजय खंतवाल, विनोद खण्डूड़ी, बाबूराम बौड़ाई, मनोज बड़ोनी, श्री सचिदानन्द नौड़ियाल, मोहन उत्तराखण्डी, प्रदीप कुकरेती, प्रदीप सती, जब्बर वर्मा, बिहारी लाल भट्ट, बिजेन्द्र यादव, पुनीत वर्मा, जगदम्बा प्रसाद नैनवाल, देव सिंह नेगी, राजेन्द्र बर्त्वाल, देवेन्द्र रावत, श्रीमती रोशनी चमोली, मनोज भट्ट, ध्वजवीर सिंह, अनुराग थपलियाल, अंकितराज सिलमाना, दयानिधि चंदोला, अंकित राज, सुशील कुमार।

तकनीकी सहयोग : डॉ. रंजन श्रीवास्तव ;झारखण्ड

विनोद रावत 'मनकोटी'  
सदस्य, संयोजक मंडल  
गरीब क्रान्ति अभियान, उत्तराखण्ड

## सन्दर्भ :

1. हिमालयन गजेटियर, एटकिंसन।
2. गजेटियर वालटन।
3. उज्ज्वल भविष्य और हमारा दायित्व, 1978, गणेश सिंह 'गरीब', 8 न्यू खन्ना मार्केट, लोदी कालोनी, नई दिल्ली।
4. पर्वतीय विकास और चकबन्दी, 1990, गणेश सिंह 'गरीब', चन्द्रन वाटिका, ग्राम व पो. सूला, वाया मवाधार, पौड़ी-गढ़वाल।
5. मजदूर कृषक संघ, 1988, गणेशसिंह 'गरीब', चन्द्रन वाटिका, ग्राम व पो. सूला, वाया मवाधार, पौड़ी गढ़वाल।
6. पहाड़ों पर चकबन्दी क्यों व कैसे?, कुंवर सिंह भण्डारी, गरीब क्रान्ति, 21/29 ई.सी. रोड, देहरादून
7. धाद, ग्रन्थ आयोजन : एक, 1994, परिकल्पना- लोकेश नवानी, संपादन सुरेश नौटियाल, प्रतीक्षा, धर्मपुर देहरादून
8. सांख्यिकी डायरी, उत्तराखण्ड, 2012-2013, अर्थ एवं संख्या निदेशालय, 100/6 नैशविला रोड, देहरादून
9. उत्तराखण्ड आन्दोलन पर एक नजर, 1992, आई.पी.एफ., गाड़ी पडाव, नैनीताल।
10. रीजनल रिपोर्टर, दिसम्बर 2012
11. नैनीताल समाचार के अंक



## क्रान्ति का आवाहन

आज पहाड़ी की पहाड़ियां पहाड़ियों की  
 चढ़ीय क्रान्ति शिखरों की चढ़ी है  
 खरीर पर्वत पहाड़ियों की चढ़ी है  
 सत्कार की पहाड़ियों की चढ़ी है

ये शिखरों की चढ़ी है, चढ़ी है  
 खरीर पर्वत पहाड़ियों की चढ़ी है  
 आज पहाड़ी चढ़ी है चढ़ी है  
 खरीर पर्वत पहाड़ियों की चढ़ी है

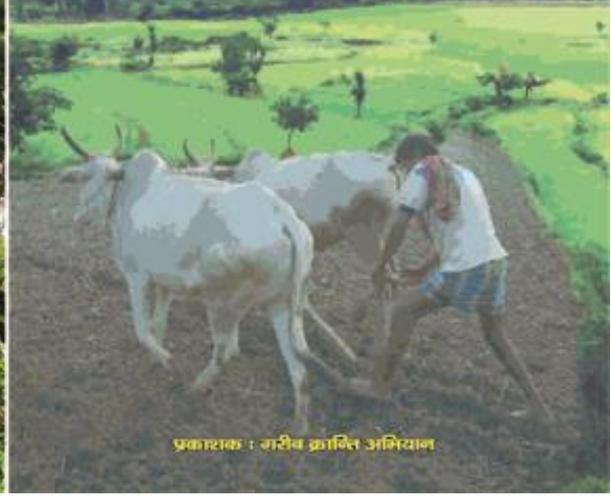
खरीर पर्वत पहाड़ियों की चढ़ी है  
 खरीर पर्वत पहाड़ियों की चढ़ी है  
 खरीर पर्वत पहाड़ियों की चढ़ी है  
 खरीर पर्वत पहाड़ियों की चढ़ी है

पहाड़ों की चढ़ी है, चढ़ी है  
 खरीर पर्वत पहाड़ियों की चढ़ी है  
 खरीर पर्वत पहाड़ियों की चढ़ी है  
 खरीर पर्वत पहाड़ियों की चढ़ी है

खरीर पर्वत पहाड़ियों की चढ़ी है  
 खरीर पर्वत पहाड़ियों की चढ़ी है  
 खरीर पर्वत पहाड़ियों की चढ़ी है  
 खरीर पर्वत पहाड़ियों की चढ़ी है

खरीर पर्वत पहाड़ियों की चढ़ी है  
 खरीर पर्वत पहाड़ियों की चढ़ी है  
 खरीर पर्वत पहाड़ियों की चढ़ी है  
 खरीर पर्वत पहाड़ियों की चढ़ी है

खरीर पर्वत पहाड़ियों की चढ़ी है



प्रकाशक : राष्ट्रीय क्रान्ति अभियान